A/152

नटराज

जगदीशचन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. ____________________

Book No. ____________________

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1524

A/152

State Museum,
LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

784

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय-कला में नृत्य की परम्परा

नटराज

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग A
पुस्तक क्रम संख्या 152
State Museum Library, Lucknow

जगदीश चन्द्र

प्रज्ञा
(प्रकाशन-गृह)
नागपुर.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशिका
कमल कुमारी,
नन्हूमल बिल्डिंग,
बजरिया, नागपुर.

बसंत-पंचमी
प्रथम आवृत्ति : १६ फरवरी, १९५६
सर्वाधिकार सुरक्षित
कपड़े की मूल्य २।)
सादा मूल्य १।)

मुद्रक
गंगाधर खंते
कल्पना प्रिंटिंग प्रेस,
गंजीपेठ, नागपुर-२.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्पण

जिनके जीवन का एक-एक क्षण,
भारतीय-कला की साधना में जागरूक है,
उन्ही-

राय कृष्णदास जी

अध्यक्ष, भारत कला-भवन, काशी
के कर-कमलों में, परम श्रद्धा-सहित-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आशीर्वचन

"कला-यात्री' और 'श्री', दोनों कला-कृतियाँ सुन्दर हैं।......आपकी पुस्तकें उत्तम हैं और उपयोगी भी। आशा है, वे आदर प्राप्त करेंगी और अपना क्रम बढाने के लिये आपको उत्साहित भी।"

—राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

784

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

इस पुस्तक का भी अपना एक इतिहास है।

हिन्दी में तो भारतीय कला का कोई वृहत् इतिहास अभी तक निकला ही नहीं किन्तु श्री वी. ए. स्मिथ और डा० आनन्द के० कुमार स्वामी के अंग्रेजी के ग्रंथ देखकर मन में विचार उठा कि यदि देवताओं के उदय और विकास की पार्श्व–भूमि पर कला का इतिहास प्रस्तुत किया जा सके, तो अच्छा रहे। हमारे देश की कला, धर्म और दर्शन से अनुप्राणित रही है। इससे उन गुत्थिओं को सुलझाने में भी सहायता मिलेगी जो अध्येता के आगे बार–बार आती हैं। यदि समकालीन साहित्य और शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन साथ–साथ चल सके तो और भी श्रेयस्कर है। भारतीय संस्कृति की गंगा में कौन–कौन सी धारायें समाहित हो गईं? इस सहस्त्रदल पद्म में कौन–कौन सा नया पत्ता जुड़ता चला गया? विदेशी इतिहासकारों ने बौद्ध, ब्राह्मण और जैन शिल्प की सीमा–रेखायें खींच दी हैं किन्तु समन्वय की जो डोरी इन्हें एक माला में गूंथे है, वह कौन सी है?

मूर्ति–विधान के ग्रंथों में प्रतिमाओं के लक्षणों का वर्णन रहता है, प्राप्त हुई प्रतिमाओं का उल्लेख रहता है, पौराणिक कथाओं की चर्चा भी की जाती है किन्तु उनकी प्रतीकात्मकता और एक शैली के दूसरी पर प्रभाव का अध्ययन नहीं रहता। श्री टी. ए. गोपीनाथ राव के विशाल ग्रंथ 'एलीमैन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी' और श्री. एच० कृष्ण शास्त्री के 'साउथ इंडियन इमेजेज ऑफ गॉडस् एन्ड गॉडसेस्' में भी इसकी चर्चा नहीं की गई।

डा० कुमार स्वामी का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'एलीमैन्ट्स ऑफ बुद्धिस्ट आइकनोग्राफ़ी' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य ही रहा कि प्राच्य-विद्याओं का वह महान ज्योतिर्धर इस ओर अधिक प्रकाश डाले बिना ही सदा के लिये अस्त हो गया।

निस्सन्देह यह एक अत्यंत आवश्यक किन्तु साथ ही बहुत कठिन कार्य है। यह व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का अर्पण चाहता है। इसके लिए जितनी अध्ययन की सुविधा व चिंतन की मनःस्थिति की आवश्यकता है, उतनी ही भ्रमण आदि के लिए अर्थ की भी। मेरे जैसे साधन-हीन, मध्य-वित्त के व्यक्ति के लिए तो यह आकाश-कुसुम तोड़ने जैसी चीज है। फिर भी मैं अपने को समेट कर कार्य में लग गया। पांच वर्ष कैसे गुजर गये, यह मैं नहीं जानता। ग्रंथ के प्रथम खंड की पान्डु-लिपि तैयार हो गई। इसी बीच एक नई घटना घटी। किशोरों के लिए मेरी 'कला-यात्री' मिशनरी ढंग से प्रकाशित हुई। देश के विद्वानों ने उसकी मुक्त-कंठ से सराहना की और आलोचकों ने उसे 'भारतीय भाषाओं में अपने ढंग की पहली पुस्तक' कहा। किन्तु अधिकारियों के 'अहं' को उससे उतनी ही गहरी ठेस भी लगी। विवश होकर, बड़े क्षोभ के साथ मुझे त्याग-पत्र दे देना पड़ा। शिल्पी जिस शिला पर बैठा मूर्ति बना रहा था, वह उसके नीचे से खिसका दी गई। जिनके आराध्य की प्रतिमा बन रही थी, उन्हीं के हाथों की ठोकर से मूर्ति नीचे जा गिरी। मेरी पुस्तक 'श्री' और यह 'नटराज' भी उसी भग्न-मूर्ति के खंड हैं।

दक्षिणापत्य की नटराज की कांस्य-प्रतिमा हमारी लोक--कला का उत्कृष्ट नमूना है।

नटराज की धातु-मूर्तियाँ बनाने वालों को स्थपति कहते हैं। स्थापत्य-कला में पारंगत आचार्य को भी स्थपति ही कहते हैं। मानसार के शिल्प-लक्षण के अनुसार ब्रह्मा के चतुर्मुख से विश्वकर्मा, मय, मनु आदि उत्पन्न हुये जिनके पुत्र स्थपति, सूत्रग्राहिन, तक्षक आदि नामों से प्रसिद्ध हुये। इनमें स्थपति का स्थान सबसे ऊँचा होता था। स्थपति के लिये यह आवश्यक था कि वह अनेक विद्याओं में पारंगत हो तथा वेद-पाठी हो। वह गणित और इतिहास शास्त्र का पंडित हो। वह सदैव प्रसन्न चित्त रहे और लोभी भी न हो। दक्षिण भारत में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नटराज की कांस्य प्रतिमायें अब भी बनती हैं किन्तु उनमें नृत्य की वह गतिमयता और ओज नहीं दिखाई देता जो नटराज की पुरानी मूर्तियों में रहता है। ऐसा लगता है कि मानो सांचे के ढले हुये खिलौने हों। वस्तुतः धातु की मूर्तियाँ बनाना एक लोक–कला थी जो उपेक्षा के कारण गिरती चली गई। पहले लोग अपने घरों के शोभन के लिए, दीप–लक्ष्मियाँ व भांति–भांति के पशुओं और पक्षियों की मूर्तियाँ खरीदते थे। विदेशों की सस्ती--वस्तुओं ने धीरे--धीरे इनका स्थान ले लिया। बहुत सी लोक--कलायें नष्ट हो गईं। इधर कुछ दिनों से लोग कलात्मक वस्तुओं की ओर आकृष्ट होते जा रहे हैं। उनकी मेजों पर भगवान बुद्ध व नटराज की प्रतिमायें दिखाई देने लगी हैं। यद्यपि अभी यह केवल एक फैशन भर है, भीतर से फूट कर बहनेवाली, कला के प्रति आस्था की भावना नहीं है। पं. नेहरू की भारत की कला पर श्रद्धा है, इसलिये सब मंत्रियों की श्रद्धा है। यदि कला के प्रति उनकी अपनी सच्ची निष्ठा होती तो देश के कलाकारों की आज यह दशा न होती, जिसके कारण हमें विदेशियों के आगे लज्जा से सिर झुका लेना पड़ता है। सच तो यह है कि जब तक भ्रष्टाचार है, तब तक सच्चे और स्वाभिमानी कलाकारों को किसी प्रकार के प्रोत्साहन की आशा ही नहीं करनी चाहिए। कला और संस्कृति के पारखी, केवल वे ही हो सकते हैं, जो व्यक्तिगत स्वार्थ और दल–बन्दियों से ऊपर उठकर सोचें।

नटराज के कुछ अंश 'नई–धारा' और 'प्रतिभा' में 'अमिताभ' के उपनाम से प्रकाशित हुये हैं।

लेखक उन समस्त विद्वानों का ऋणी है जिनके ग्रंथों से इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गई है।

राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त ने अपना आशीर्वचन भेज कर मुझे चिर अनुग्रहीत किया है।

एलोरा के शिव–नृत्य का रेखा–चित्र श्री विनायक मसोजी ने बनाया है। लेखक, मद्रास संग्रहालय के नटराज के चित्र के लिए भारत सरकार का आभारी है। ब्रुकलेन संग्रहालय के चित्र श्री एच० बी० कुलकर्णी के सौजन्य से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राप्त हुये हैं। श्री बालचन्द जी जैन से जो सहायता मिली है, उसके लिए वह उनका कृतज्ञ है।

पुस्तक भाई हेमचन्द्र जी वाहने की देख–रेख में छपी है। इतनी कला–पूर्ण छपाई का श्रेय कल्पना प्रिंटिंग प्रेस के संचालक श्री गंगाधर खंते को है।

मैं इन सब महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ।

––जगदीश चन्द्र.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नृत्य मूर्ति शिव, एलोरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

A 152

नृत्य की परम्परा

" ब्रह्म क्या है ? " बालक भृगु ने अपने पिता वरुण से प्रश्न किया ।

वरुण के माथे पर चिंतन की रेखायें खिंच गईं । वे कुछ देर तक अपने पुत्र की ओर देखते रहे । उनकी दृष्टि मानो भृगु के मन की गहराई में पैठ, उनकी जिज्ञासा की थाह लेने लगी । फिर सहसा उनके मुख पर मन्द स्मित की एक लहर दौड़ गई ।

" तुम ब्रह्म को जानना चाहते हो ? उस ब्रह्म को जिसे योगि-जन जीवन-भर साधना करके भी नहीं जान पाते ?" वरुण बोले ।

भृगु ने सिर झुका लिया । वे मौन खड़े रहे । उनकी जिज्ञासा की तीव्र भावना त्रिकालज्ञ ऋषि वरुण से न छिप सकी । वे फिर बोले–

" सृष्टि के समय प्राणी जिससे जन्म लेता है, जिससे उसका पालन होता है और अंत में वह जिसमें निलय भी हो जाता है, वही ब्रह्म है । साधक उसे तप के द्वारा जानने की चेष्टा करता है । "

भृगु ब्रह्म का रहस्य जानने के लिये एकांत साधना में लीन हो गये । उन्होंने अन्न को, प्राण को, मन को और चेतन–स्वरूप जीवात्मा को ही ब्रह्म की संज्ञा दी, पर मन को संतोष न मिला । जान पड़ा कि यह सब तो वाह्य-रूप भर हैं । तप करते–करते एक दिन उन्हें सत्य भी मिला–" आनन्द ही ब्रह्म है । "

भारतीय दार्शनिक ने इस आनन्द–रूप ब्रह्म को विश्व भर में व्याप्त देखा और उसे ' रस–स्वरूप ' माना । उपनिषद् कार ने कहा, ' जीवों का रस पृथ्वी है । पृथ्वी का रस जल है । जल का रस औषधि है । औषधि का रस पुरुष है । पुरुष का रस वाक् है, और वाक् का रस ऋक् ' इसी प्रकार शृंखला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बढ़ती जाती है, उस तक जो परम-रस; आनन्द घन है।

नृत्य, आनन्द-तत्व की सहज अभिव्यक्ति है। विश्वात्मा का आनन्द मनु-बालक के मन में भी निर्झर सा फूट पड़ा। सृष्टि के किसी आदि-युग में मानव को जीवन-पथ पर चलते-चलते वाचाल बालिका सी 'भाषा' मिली। वही उसकी प्रणयनी बनी। उससे भाषा का अपने हाथों नित्य-नवीन शृंगार किया, उसे काव्यलंकारों से सजाया, किन्तु नृत्य की मुद्राओं से तो उसकी जान-पहिचान तभी से हो गई, जब उसने इस धरती पर अपना नन्हा, लाल-लाल कोंपल सा, सुकुमार चरण रक्खा। वह जाने-अनजाने पतले-पतले ओंठ विसूरता, कभी वय-माता के इशारे पर किलकारियाँ मारता, अधखिले कमल सा खिल पड़ता, कभी 'अक्षय-वट के शिशु' की भांति अनासक्त भाव से अपना अंगूठा चूसने लगता, तब कभी-कभी नन्हीं-नन्हीं उंगलियाँ चलाकर क्रीडायें भी करता। यही मुद्रायें कालांतर में नृत्य का आधार बनीं। नृत्य की अपनी अर्थ-पूर्ण भाषा बनी, जो शब्दों की भाषा से भी अधिक सामर्थवती हुई। जो बात, बात न कह सकी, भावना के जिस भार को भाषा आगे ले जाने में थक गई, वही नृत्य-मुद्रा नयनों की कोर से उठाकर आगे, बहुत आगे ले गई।

पार्थिव जगत का प्रथम मानव किन भावनाओं के उद्वेग में कब नाच उठा, यह हम नहीं जानते। कहते हैं कि शिव ही सृष्टि के प्रथम नर्तक हैं। विश्व-कलाकार शिव ने सृष्टि के कण-कण में ताल, लय-मयता और चेतना भर कर नृत्य किया तब उनके उस आनन्द-रूप में ही ब्रह्म की तीनों क्रियाओं; सृजन, पालन और संहार का प्रतिनिधित्व हुआ-निर्माण का नृत्य नादंत, जीवन और सौन्दर्य के मनोहारी नृत्य सांध्य-प्रदोष, ललित, कटि-सम, ललाट-तिलक और संहार का नृत्य तांडव।

जहाँ तक इतिहास की दृष्टि जाती है, वह प्राचीन काल के मानव के जीवन-व्यापारों में नृत्य की थिरकन भी देखता है। सिन्धु-संस्कृति के जो अवशेष-चिन्ह मोहन्जोदारो की खुदाई में मिले, उनमें अनेक मुहरों, आभूषणों तथा मृतिका-मूर्तियों के अतिरिक्त एक नर्तकी की प्रतिमा भी मिली है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नर्तकी अनावृता है। वह केवल गहने पहने है । उसके गले में हंसली है। बायां हाथ कन्धे से कलाइयों तक चूड़ियों से भरा है। वह दाहिना हाथ कमर पर रक्खे है । नर्तकी गर्दन टेढ़ी किये है । उसके शरीर पर वस्त्र नहीं हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्राक्–ऐतिहासिक सिन्धु–सभ्यता में वस्त्रों का प्रचलन न था। उन दिनों सूत काता जाता था और उसके वस्त्र भी बनते थे, इसके काफी प्रमाण मिल चुके हैं।

मोहन्जोदारो के रंग–बिरंगे खिलौने, उन पर की हुई पच्चीकारी, मृत्तिका की मूर्तियां, नगर के विशाल स्नानागार, समानान्तर खिची हुई सड़कें व जल-निर्गम की विविध प्रणालियाँ, जहाँ सिन्धु-घाटी की उन्नत सभ्यता तथा सुख–समृद्धि आदि की परिचायक हैं, वहीं इस नर्तकी की प्रतिमा से यह पता भी लगता है कि ईसा से लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्व, भारत नृत्य की कला से भी परिचित था।

ऋग्वेद में भी नृत्य में उड़ने वाली धूल का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद तथा अथर्व वेद में अप्सराओं का वर्णन हुआ है। उर्वशी और पुरूरुवा की प्रेम–गाथा उस युग के मानव की सुकुमार भावना की अनूठी झांकी है। अप्सराओं के साथ नृत्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। अप्सरायें कौन थीं, उनका मूल-स्वरूप क्या था, इस सम्बन्ध में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

ऋग्वेद में एक शब्द 'पंचजनाः' आया है, जिसका अर्थ है, पांच जातियां।

वैदिक ऋषि अदिति की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि, "वही माता है, पुत्र है, वही सर्व–देवता है और वही 'पंचजनाः' भी है।" अदिति के साथ इन्द्र, पृथिवी, पूषा, भग और 'पंचजनाः' को भी यज्ञ–स्थली में आने का निमंत्रण दिया जाता है। श्री यास्काचार्य ने अपने निरुक्त में स्पष्ट कर दिया है कि इस शब्द का उपयोग देव, पितृगण, गन्धर्व और असुरों के लिये हुआ है। श्री सायणाचार्य अप्सराओं और गन्धर्वों को एक ही जाति का मानते हैं।

अथर्व वेद के अनुसार अप्सरायें गन्धर्वों की पत्नियाँ हैं, "गन्धर्व जो देवताओं की ही जाति के हैं, जिनके लम्बे–लम्बे बाल हैं, मर्त्य–लोक की स्त्रियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को रिझाने के लिये सुन्दर रूप धारण कर लेते हैं, वे मनुष्यों की गृहस्थी में व्यवधान डालना छोड़ दें क्योंकि उनके भी उनकी पत्नियां अप्सरायें हैं।"

अग्नि पुराण में गन्धर्वों के ग्यारह गण माने गये हैं, अमात्य, अंधारि, वंभारि, सूर्य-वच्ची, कृधु, हस्त, सुहस्त, मूर्धन्वा और विश्वावसु। विश्वावसु का उल्लेख, ऋग्वेद में सूर्या के विवाह-वर्णन में भी आता है।

अप्सरायें द्यूत-कर्म में बड़ी निपुण होती थीं। वे ही सदैव जीतती थीं। अथर्व वेद का मंत्रकार उनसे प्रार्थना करता है कि, "वे उसके पांसे के चारो ओर नृत्य करती रहें। विपक्षी हार जाय।"

पुराण-साहित्य में अप्सराओं को इन्द्र की सभा में नृत्य करने वाली कहा गया है।

पूर्ववर्ती साहित्य के अनुसार गंधर्व दो प्रकार के हुआ करते थे। द्यु:स्थान के और अंतरिक्ष स्थान के। भाष्यकार 'द्युलोक के गंधर्व का अभिप्राय सूर्य से लेते हैं, जो अप्सरा अर्थात् वाष्प कणों को अपनी ओर खींच लेता है। अंतरिक्ष के मेघ को भी गन्धर्व की संज्ञा दी गई है और बरसने वाली जल की लड़ियों को नृत्य करने वाली अप्सरायें कहा गया है।

इन्द्र अंतरिक्ष का स्वामी है। सम्भवतः इसीलिए उसे पुराणों में गन्धर्व और अप्सराओं का स्वामी मान लिया गया है। महाभारत के अनुसार इन्द्र के यहां साम-गान में कुशल तुम्बरु आदि गन्धर्व मनोहारिणी गाथायें गाते थे तथा घृताची, मेनका, रम्भा, उर्वशी, स्वयंप्रभा, मधुस्वरा आदि अप्सरायें नृत्य किया करती थीं। मेनका का नाम शतपथ ब्राह्मण में भी आता है। वह कालान्तर में, पुराणों में शकुन्तला की माता के रूप में प्रख्यात हुई।

महाभारत में दक्ष-कन्या प्राधा और कश्यप से अलम्बुषा, मिश्रकेशी विद्युत-पर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, केशिनी, सुरता और सुप्रिया आदि अप्सराओं और अति-बाहु, हाहा, हूहू और तुम्बरु, चार गन्धर्वों ने जन्म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिया। महाभारत में चित्रसेन गन्धर्व का उल्लेख कई स्थानों पर आया है। अर्जुन जब देवराज इन्द्र के यहाँ शत्रुघाती वज्र और अन्य दिव्यास्त्रों का प्रयोग सीखने गये, तब उन्होंने चित्रसेन गन्धर्व से नृत्य की शिक्षा भी ली।

उत्तरापथ में, कुमाऊं प्रांत में अब भी एक जाति बची–खुची रह गई है, जो अपने को गन्धर्व कहती है। इनके यहां की स्त्रियां नाचने–गाने का पेशा किया करती हैं। संभव है कि यक्ष और नाग जातियों के समान एक जाति यह भी हो, जिसे काव्यों और पुराणों में मानवोत्तर रूप दे दिया गया हो।

अप्सराओं पर इतनी चर्चा केवल इसीलिए की गई कि भारतीय–कला में सबसे पहले हमें उन्हीं के नृत्य–दृश्य मिलते हैं। वहीं से परम्परा प्रारम्भ होती है।

नृत्य के रूप सब से पहले बौद्ध–शिल्प में उतरे किन्तु उसमें नृत्य के आध्यात्मिक पक्ष को प्रतिष्ठा नहीं दी गई। इसका कारण स्वयं भगवान बुद्ध का दर्शन था। संगीत, वादन, नृत्य आदि ऐसी कलायें मानी जाती थीं, जिनमें लिप्त होने से मनुष्य की संसार के प्रति आसक्ति बढ़ती है। इनके द्वारा धार्मिक तत्वों का प्रकटीकरण संभव नहीं है। इसीलिए बौद्ध–शिल्प में नृत्य–मूर्ति शिव, नृत्य गणपति, नृत्य–रता सरस्वती अथवा कृष्ण कालिय–दमन जैसी कृतियों का सृजन नहीं हुआ। नृत्य को लोक–जीवन के एक अंग–विशेष के रूप में ही आंका गया। भारतीय शिल्पी को उसमें भी बड़ी सफलता मिली। हमारे देश की कला की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसमें जहा अदृश्य जगत की भावनाओं को दृश्य–जगत में लाने की अद्भुत शक्ति है, वहीं लोक–जीवन का अंकन करने की भी अपूर्व क्षमता है। बौद्ध-शिल्पियों को जातक-कथाओं के रूप में कथानकों का अक्षय भंडार मिल गया था। जैसे कथाकार अपनी कहानी कहता चलता है, वैसे ही यह कलाकार शिल्प-प्रतिमाओं और भित्ति-चित्रों के माध्यम से बोधिसत्व की जीवन-गाथायें कहने लगे। यही शैली, जावा के विशाल बौद्ध-मंदिर 'बोरो बुदूर' में भी दिखाई देती है और इसी शैली पर 'अंकोर वाट' के हिन्दू-मन्दिर में रामायण के कथानकों का शिल्प-रूप अंकित हुआ है। यही शैली पहाड़पुर, (बंगाल)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मंदिर में भी अपनाई गई है। इसका श्रेय मूल-रूप से बौद्ध-शिल्प को है।

बोधिसत्व सभी जातियों और वर्गों में अवतरित हुये हैं। इनमें नाग है, हंस हैं, मृग हैं और हाथी भी है। मानव-समाज में राजा से लेकर रंक तक बोधिसत्वों की कोटि में आये हैं। मानो जाति और वर्गों की दीवारें तोड़ कर भगवान बुद्ध ने सबको पुण्य-पथ पर विचरण करने का अधिकार दिया हो। इस प्रकार शिल्पी को समस्त लोक-जीवन और उसके पीछे विराट प्रकृति की पार्श्वभूमि अंकित करने को मिल गई। उसने भांति-भांति के वृक्ष, वल्लरियाँ स्फुटित, अर्ध-स्फुटित कमलों से भरी पुष्करणियाँ, अनेक पशु-पक्षी और उनकी विविध भाव-मुद्रायें आंकीं, साथ ही मनोविज्ञान के गहरे अध्ययन के साथ मानव जीवन के लगभग सभी पहलुओं को स्पर्श किया। जातों में जन्म, मृत्यु, शृंगार, विरह, राजाओं की विजय–यात्रायें, उनकी सभायें और सभाओं के नृत्य-दृश्य, सब कुछ अंकित हुये। देवगण भी लोक-जीवन से, अपने मूल अथवा किंचित् परिवर्तित रूप में बौद्ध वाङ्मय में आ गये थे, वे भी इस शिल्प में उतरे।

इन्द्र अथवा शक्र की सुधर्मा सभा भी भरहुत के शिल्प में आंकी गई।

भरहुत के एक अर्ध चित्र में नृत्य-रता अप्सरायें दिखाई गईं हैं। वे विविध हाव-भाव प्रदर्शित कर रही हैं। एक दुमंजिला भवन है, जिसकी छत को कुछ बौने अपने हाथों से साधे हुए हैं। छत पर नाच चल रहा है। बौने घुटनों तक की धोती पहने हैं, जिसके दोनों छोर लटक रहे हैं। पगड़ी पेंचदार है। बीच में बालों का जूड़ा है। इसे बांधकर लट्टू जैसा आकार दे दिया गया है। अर्ध-चित्र बाईं ओर टूट गया है, पर इससे चित्र की कोई विशेष हानि नहीं हुई है। दाहिनी ओर चार अप्सराये नाच रही हैं। वे एक हाथ कान पर रख कर दूसरे हाथ से अलाप ले रही हैं। उनके हाथों में चूड़ियाँ है और पैरों में गोल कड़े। गले में चार-पाँच लड़ की मालायें है। उनकी धोती घुटनों तक की है, जो कांछ लगाकर पहनी गई है। उनकी कमर में करधनी है। इसे मेखला कहते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसमें करधनी और पेटी दोनों रहती थीं। उनके बीच में एक बालक भी नाच रहा है। भरहुत के शिल्प को देखकर लगता है कि उस समय किसी स्त्री अथवा पुरुष का सिर अनावृत नहीं रहता था। इन स्त्रियों के सिर पर भी पगड़ियाँ हैं। इनकी कटि बहुत चौड़ी और वक्ष चौड़ा है। यह अप्सरायें हैं। शिल्प–रत्न आदि ब्राह्मण-शिल्प के ग्रंथों में, आगे चलकर उनके प्रतिमा लक्षणों में यह भी बतलाया गया कि उनकी कटि अत्यंत क्षीण, नितम्ब भारी और स्तन पीन होना चाहिए। अप्सरायें कलापूर्ण आभूषणों से अंलकृता हों। वे अत्यंत सौन्दर्य-शालिनी हों और उनके मुख पर मन्द स्मित की एक रेखा हो। सुप्रभेदागम में भी रम्भा, विपुला, उर्वशी और तिलोत्तमा के यही प्रतिमा–लक्षण बतलाये गए हैं।

बौद्ध ग्रंथ 'ललित–विस्तर' में सिद्धार्थ की तपस्या के समय जो अप्सरायें उन्हें साधना–भ्रष्ट करने आई, वे सोने की करधनियाँ पहने थीं, जिनमें कई लड़ियां थीं। उन करधनियों में छोटी–छोटी घंटियां भी थीं, जो बार-बार बज उठती थीं।

भरहुत के नृत्य दृश्य में इन अप्सराओं के नाम भी अंकित हैं, सुभदा (सुभद्रा), सुदसन अछरा (सुदर्शना अप्सरा) मिसकेसी अछरा (मिश्रकेशी अप्सरा) और अलम्बुसा (अलम्बुषा), इन अप्सराओं में से मिश्रकेशी और अलम्बुषा के नाम महाभारत में भी मिलते हैं।

जिस प्रकार मिश्रकेशी और अलम्बुषा भरहुत के शिल्प में आगई उसी प्रकार वे महाभारत में भी चली गई। वास्तव में निवासिनी वे 'लोक–जीवन' के 'देश' की ही थीं।

वह समन्वय का युग था। भारतीय संस्कृति की गंगा अनेक धाराओं को अपने हाथों से हृदय से लगा कर, बहती जा रही थी–निषाद जाति के नाग और यक्ष भी उसी में आकर मिल गए। उन्हें इसी समन्वय की पुनीत भावना ने इतनी प्रतिष्ठा दे दी कि उनकी उपासना होने लगी।

ऋग्वेद के देवताओं में यक्ष का स्थान कहीं नहीं है। अथर्व वेद में उसे ब्रह्म की संज्ञा दे दी गई।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जब नाग जाति ने बौद्ध-धर्म की गरिमा के आगे श्रद्धा से मस्तक झुका दिया तब उनका भी शिल्प में अंकन हुआ। प्रारम्भिक बौद्ध–शिल्प में वे नाग की पूजा और फिर वृक्ष, चैत्य आदि प्रतीकों की उपासना करते हुए दिखाई देते हैं। वह रूप और शोभा–सम्पन्न राजाओं जैसे प्रतीत होते हैं। उनके सिर पर उनका प्रतीक नाग का फन रहता है। पुरुष के सिर पर पाँच अथवा उससे अधिक और स्त्री के ऊपर एक। भरहुत में नागराज चकवाको की आदमक़द प्रतिमा (अर्धचित्र) इतनी लालित्य और माधुर्यमयी है, मानो कोई देवता ही धरती पर उतर आया हो। वह सौष्ठव में गुप्त–कला का छोर सा छूती प्रतीत होती है।

सांची के तोरणों पर भी नाग दर्शन देते हैं। कहीं वे बोधि–वृक्ष की उपासना करते दिखाई देते हैं, कहीं सरोवरों में खड़े हुए। नागनियों के नृत्य और गान का वह दृश्य तो अनूठा ही है, जिसमें नागराज प्रसन्न–मुद्रा में बैठे हैं। पास ही उनकी रानियां बैठी खा-पी रही है, अन्य नागनियाँ नृत्य और गान में अपने आप को भूल सा गई हैं। चंवर–धारिणी और वेणु–वादिनी नागनियां तनिक झुकीं सी सहज भंगिमा में खड़ी हैं। नृत्यरता नागिनियाँ तन्मय हो उठीं हैं। नृत्य में मोहकता लाने के लिए नृत्य की जिन भंगिमाओं का समावेश चाहिए, उनसे यह पूर्ण है। भरहुत से साँची की कला अधिक विकसित है। उसकी वेदिका व तोरणों पर अंकोरी गई कृतियाँ अधिक सौष्ठव–मयी और सजीव हैं। नृत्य में गति के अतिरिक्त रस–सृजन के लिए लावण्य भी चाहिए। इस दृष्टि से भी साँची का नागिनियों का यह नृत्य, भरहुत की 'अप्सराओं' के नृत्य से अधिक प्राण–मय है।

सांची के शिल्प में कलाकार की जातक–कथायें अपने–आप अपनी कहानी सुनाती सी लगती हैं। भारतीय–कला की प्राण; चिंतन की भावना का नन्हा विटप भी हमें सांची की कला में दिखाई देने लगता है, जिसका विकास गुप्तकला में हुआ, जहां वह विशाल वट–वृक्ष बन गया, पर साथ ही उसका लोक–जीवन से गठबंधन बना रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण में अमरावती का शिल्प मन-मोहक तो है ही, कला के इतिहास की दृष्टि से भी अपना विशेष महत्व रखता है। मद्रास के निकट, कृष्णा नदी के किनारे, ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में इस बौद्ध-स्तूप का निर्माण हुआ था। यह भरहुत और सांची का समकलीन कहा जा सकता है। अलंकरण आदि जो वेदिका पर हैं, दूसरी शताब्दी के लगभग बनाये गए। फिर स्तूप के नीचे के भाग को संगमर्मर से ढंक कर, उसके ऊपर प्रतिमायें और कमल आदि विविध अलंकरण बनाये गये। इस शिल्प का काल वह था, जब आर्यावर्त में मथुरा की कला तथा पंचनद व पश्चिमोत्तर प्रदेश में गंधार शैली फूल-फल रही थी। भगवान बुद्ध की प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी थी। अपने प्रतीकों की जगह वे स्वयं दर्शन देने लगे थे। उनके मुख पर एक चिंतन की छाया भी दिखाई देने लगी थी। कमल, चाहे जिस सरोवर में खिले, उसकी सुरभि तो वही रहती है। बुद्ध कैसे थे? यह हम नहीं जानते। विभिन्न शिल्प-शैलियों में विविध प्रकार से उनका रूप आंका गया, पर आकृति में कोई साम्य न होते हुये भी, जिस वस्तु को देखते ही हम कह उठते हैं, 'अरे यह तो भगवान बुद्ध हैं'; -वह वस्तु भारतीय कला की प्राण-भावना है और वह है, यह चिंतन ही। सम्भवत: अमरावती के इस शिल्प से ही दक्षिणापत्य के शिल्पियों को एक पूर्व-परम्परा प्राप्त हुई। उन्होंने एलोरा, एलीफैन्टा व अजंता में भी भक्ति-भावना-मयी प्रतिमाओं का सृजन किया।

अमरावती में, नाग-पूजा का स्थान बुद्ध-पूजा ने कैसे ले लिया, यह भी दिखाई पड़ता है। भरहुत तथा सांची के नृत्य-दृश्यों में जहाँ लौकिक भावना छाई थी, वहाँ अमरावती में उसका स्थान भक्ति-भावना ले लेती है। अमरावती में नृत्य के अनेक दृश्य हैं। एक गोलाकार अर्ध-चित्र में नृत्य चल रहा है। एक पुरुष अपने हाथ में सम्भवत: बुद्ध का कोई स्मृति-चिन्ह लिए खड़ा है। उपासक जिनमें एक नाग भी है, भाव-विभोर होकर नाच रहे हैं। एक अन्य पाषाण-चित्र में राजा की सभा में नर्तकियाँ नाच रही हैं।

श्री फगुर्सन के एक विशाल ग्रंथ 'दि ट्री एन्ड सर्पेंट वरशिप' में अमरावती का एक नृत्य-दृश्य देख कर मैं अवाक् रह गया। नटराज की प्रतिमा मेरे मानस-चक्षुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के आगे आकर खड़ी हो गई। नर्तक का वैसा ही उठा हुआ चरण, हाथ की वैसी ही अभय–मुद्रा। मुझे ऐसा जान पड़ा कि नटराज की पूर्व–परम्परा वहीं है। इतना ही नहीं विष्णु के सिर पर जो शेष–नाग का फन तना रहता है, उसकी कल्पना भी ऐसा लगता है कि अमरावती के शिल्प से ही भारतीय–शिल्प में उतरी है।

विष्णु की मध्य–कालीन प्रतिमाओं पर शेष नाग का फन, छत्र की भांति, उनके सिर के ऊपर तना रहता है। डॉ. वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने शेष की प्रतीकात्मकता के सम्बन्ध में लिखा है, 'सहस्र शीर्षा पुरुष अनन्त है, उसके एक अंश से यह जगत स्थित कहा जाता है। विष्णु उसका वह रूप है, जो विश्व में व्याप्त हो गया है। इससे बचा हुआ जो शत–कोटि अनन्त ब्रह्म है, वही, सहस्र शीर्षा पुरुष है, उसका नाम ही शेष है, क्योंकि विश्व के बाद जो शेष रहता है, वह वही है।"

दर्शन की यह 'अर्थवती परिभाषा' पूर्ण होते हुए भी शिल्प में इसकी पूर्व–परम्परा बौद्ध–शिल्प से, विशेष रूप से अमरावती के शिल्प से ग्रहण की गई है। इसका उदाहरण अमरावती की बुद्ध--प्रतिमा तथा बादामी की विष्णु की मूर्ति है। बौद्ध--वाङमय के अनुसार मुचुलिन्द नाग ने भगवान बुद्ध पर छाया की थी, नन्द, उपनन्द नागों ने उन्हें स्नान कराया था और बौद्धों के विश्वास के अनुसार जब भगवान बुद्ध स्वर्ग गए थे तब उनके प्रमुख शिष्य महा मोद्गलायन ने इन्हीं नन्दोपनन्द को पराजित भी किया था।

नाग पूजा पहले बहु–प्रचलित थी। स्तूपों पर भी नाग आंके जाते थे। अमरावती के शिला–फलकों में भी, अनेक पर, जो अपेक्षाकृत अधिक पुराने हैं, नाग ही मिलते हैं। दक्षिणापत्य में, बहुत संभव है कि स्तूप की परिपाटी बहुत अधिक प्राचीन हो। अमरावती की इन कृतियों में, स्तूपों पर, उपासना–स्थल पर, सामने ही, कुंडली मारे हुए सर्प आंके गए हैं। वे पांच फन के हैं। स्तूप के अपेक्षाकृत नये शिला–फलकों पर ज्यों–ज्यों अलंकरणों की बहुतायत होती जाती है, मनुष्यों और पशुओं की आकृतियों का समावेश होता जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्यों ज्यों समय आगे बढ़ता जाता है, त्यों त्यों सर्प के स्थान पर बुद्ध प्रतिमा मिलती जाती है। नाग उनकी उपासना करते हुए दिखाई देने लगते हैं। एक अर्ध-चित्र में बुद्ध खड़े हैं और एक नाग उनकी पूजा कर रहा है। वह बाईं ओर है। दाहिनी ओर एक स्त्री तथा एक पुरुष है। नाग की मुद्रा वही है, जो भेलसा की उदयगिरि गुफा में वाराह के हाथ जोड़े शेष नाग की अथवा आठवीं शताब्दी की राजिम की त्रिविक्रम प्रतिमा में, उनके हाथ जोड़ कर बैठे हुये, नाग की है।

एक कुंडली मारे सर्प पर बुद्ध बैठे हैं। उनका एक हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा है। पीछे गोलाकार प्रभा-मंडल है। सिर पर दुहरा नाग-फन है। इसे देखते ही विष्णु की बादामी की वह मूर्ति स्मरण हो आती है, जिसमें वे शेष की कुंडली पर बैठे हैं और सिर पर नाग-फन तना है।

इस साम्य को देखते हुए यदि नटराज की कास्य प्रतिमा की मूल कल्पना अमरावती के शिल्प में दिखाई दे, तो कोई आश्चर्य नहीं है।

बौद्ध-शिल्प में नृत्य की यह परम्परा आगे बढ़ती गई। सातवीं शताब्दी की औरंगाबाद की बौद्ध--गुफाओं में एक अतीव भाव-पूर्ण नृत्य-दृश्य दीवार पर है। इसमें एक स्त्री तन्मय होकर नृत्य कर रही है और कई स्त्रियाँ वंशी, व मंजीर आदि वाद्य बजा रही हैं। कुछ गा रही हैं।

जिस गुफा में यह पाषाण-चित्र है, वह प्राचीन बौद्ध--गुहा है। उसमें बोधिसत्वों की प्रतिमायें भी आंकी गई हैं किन्तु इस नृत्य दृश्य के साथ एलोरा की शिव-नृत्य की प्रतिमाओं में इतना साम्य है कि कई कला-समीक्षकों ने इसे 'गौरी-नृत्य' का नाम दे दिया है।

प्राचीन भित्ति-चित्रों में भी नृत्य-दृश्य दिखाई देते हैं। अजंता के चित्र तो अपने युग के लोक-जीवन के दर्पण हैं। पहली गुफा में एक राज-सभा का नृत्य आंका गया है। एक नाग राजा, अपनी रानी के साथ आसन पर बैठा दिखाई देता है। राजा रूपवान है। गले में बड़े-बड़े मोतियों की माला है। रानी, राजा की ओर से मुंह मोड़े, तनिक शरमाई हुई सी बैठी है। रानी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चरण के निकट ही एक चरण उठाये, हाथ ऊंचा किये नृत्य की मुद्रा में खड़ी है। लगता है कि क्षण-भर में थिरक उठेगी। एक नर्तकी रानी के पीछे खड़ी है।

इससे तनिक हट कर एक अन्य भित्ति-चित्र में, जो मिट सा गया है, एक नर्तकी कमर पर हाथ रक्खे नृत्य करती दिखाई देती है, उसके गले में रत्नों का हार और कटि में करधनी है। वह महीन गाज के कपड़े पहने है। अजंता की स्त्रियों का रूप और उनकी भाव-मुद्रायें तो अनूठी हैं ही, उनके वस्त्र और अलंकार भी देखने की ही चीज हैं। आभूषण कला-पूर्ण हैं। उनकी डिज़ायनें सुन्दर हैं। शरीर पर इतने अधिक आभूषण नहीं हैं कि रूप ही दब जाय। वस्त्र झीने हैं, जिन्हें देखकर उस युग के बने वस्त्रों की उत्कृष्टता की कल्पना की जा सकती है। नृत्य के यह दृश्य आँखों के आगे एक सजीव वातावरण खड़ा कर देते हैं।

अजंता के भित्ति-चित्रों की परम्परा ही बाघ की गुफाओं में भी बढ़ती दिखाई देती है। इसके चित्रकारों ने भी अपने अंकन के लिये वे ही विषय चुने हैं। इनमें कहीं भगवान बुद्ध के चरणों में श्रद्धा-भक्ति से झुके आराधक दिखाई देते हैं, कहीं राजाओं की यात्रायें हैं, कहीं स्त्रियां बैठी एक-दूसरे के दुःख में सहज सहानुभूति प्रदर्शित कर रही हैं। इनमें नृत्य-दृश्य भी हैं। नर्तकियां खड़ी हैं और उनके साथ मृदंग, पखावज आदि बजाने वाली स्त्रियां हैं। नर्तकियां लम्बे बाहों के, घुटनों को छूते हुये वस्त्र पहने हैं। बाल कंधो पर लहरा रहे हैं। इन नृत्य-दृश्यों के सम्बन्ध में श्री श्याम सुन्दर जी द्विवेदी ने लिखा है–

"नृत्य-दृश्यों में जो चित्र अंकित हैं, वे माधुर्य मंडित तो हैं ही किन्तु निर्दोष भी हैं। उनमें वासना जनित चेष्टा न होकर, उच्च संस्कार-जन्म जीवन की शाश्वत लय भी गति-शील है। नारी, रूप-सौन्दर्य का प्रतिष्ठान हमें जहाँ मिलता है, वहाँ वह सौन्दर्य और शक्ति की सात्विक महिमा से उपलब्ध होता है। आभूषणों के प्रयोग में भी कलाकार का अभिनव परिकल्पना और उन्नत परि-मार्जित रुचि ने चित्रों की स्वाभाविकता को सुरक्षित रक्खा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाघ की जिस गुफा में यह नृत्य–दृष्य आंके गये हैं, उसे रंग–महल कहा जाता है। अपने विविध, भावपूर्ण भित्ति–चित्रों के कारण इसे बाघ की चित्र-शाला कहा जा सकता है। वास्तव में यह एक लम्बा–चौड़ा, चौरानवै वर्ग फुट का एक विहार है, जिसकी छत को अड़तीस खम्भे साधे हुये हैं। इस कला–मंडप के चित्रों का अंकन पांचवीं और छठी शताब्दी में हुआ है। अजंता के कलाकारों ने जहाँ अपने चित्रों के विषय भगवान बुद्ध की जीवन–गाथा तथा उनके पूर्व–जन्म की जातक–कथाओं से लिये, वहीं बाघ की चितेरों ने अपने इन भित्ति–चित्रों में तत्कालीन समाज के उन लोकत्सवों की झलक भी उतारी, जो उसमें नवोन्मेष भरते थे। रंग–महल के एक भित्ति–चित्र में हाथिओं का जुलूस निकल रहा है। सजे–सजाये हाथियों पर अंकुश लिए महावत बैठे हैं और पीछे प्रसन्न–वदना स्त्रियाँ। चित्र, आँखों के आगे एक सजीव वातावरण खड़ा कर देने में समर्थ है।

रंग महल के वह नृत्य–दृश्य भी अपने ढंग के अनूठे हैं जिनमें डण्डे, मृदंग व मंजीर बजाने वाली स्त्रियों के बीच में नर्तक जो सम्भवतः पुरुष हैं नृत्य की भाव–मुद्रायें प्रदर्शित कर रहे हैं। एक नृत्य–दृश्य मे नर्तक तनिक पैर तिरछा किये खड़ा है। वह दोनों हाथों से कोई भाव प्रकट कर रहा है। वह तिरछी नज़र से देख रहा है। ओठों से मुस्कान फूटी सी पड़ती है। उसके सिर पर नीली और सफेद धारियोंदार कपड़ा है, जिसमें से बालों की लटें छिटक कर कंधों पर लहराने लगी हैं। कानों में बड़े–बड़े कुंडल हैं। हाथों में कंकण हैं। वह लम्बा, हरे रंग का, जिसमें सफेद बुन्दके हैं; अंगरखा पहने है। गले में मोतियों की माला है। वह तंग, धारियों दार पाजामा पहने है। दाहिना पैर तनिक झुका हुआ है। उसे सात स्त्रियाँ घेरे हुये खड़ी हैं। उसके निकट की एक स्त्री, जिसके शरीर के ऊपरी भाग पर कोई वस्त्र नहीं है, गले में ढोलक डाले, उसे बजाने में मग्न है। तीन स्त्रियों के हाथों में लकड़ी के छोटे–छोटे डन्डे हैं, जिन्हें वे बजा रही हैं और शेष तीन के हाथों में मंजीरे। उनमें से एक आधी बांहों की कुरती पहने है। एक के कन्धे पर धारियों दार कपड़ा पड़ा है शेष के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शरीर का ऊपरी भाग नग्न है। उनके हाथों में कंकन हैं, गले में मोतियों की मालायें और कानों में गोल कुंडल। उनके बालों का जूड़ा बंधा हुआ है और उसमें सफेद फूलों की मालायें भी हैं।

उसके पास ही एक अन्य नृत्य–मंडली आंकी गई है। इसमें छः स्त्रियों के बीच में जो मंजीर, डन्डे व मृदंग बजा रही हैं, एक नर्तक खड़ा है। वह भी हरे रंग का, घुटनों से नीचे का वस्त्र पहने है। वह नृत्य–मुद्रा में खड़ा, मानो आत्म–विस्मृत हो, किसी ओर देख रहा है। उसके लम्बे केश कंधों पर लहरा रहे हैं।

प्राचीन युग में परदे की रूढ़ि ने समाज की स्त्रियों को अपने बन्धन में न जकड़ा था, तब वे उत्सवों आदि में पुरुषों के साथ ही भाग लेती थीं। वे पुरुषों के साथ नृत्य भी करती थीं। कभी वे वाद्य बजाती थीं और पुरुष नृत्य करते थे। जो नृत्य इन भित्ति–चित्रों में आंके गये हैं, वे उस समय समाज में भी प्रचलित थे। बाघ के इस नृत्य को डॉ. वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने प्राचीन कालका 'हल्लीसक नृत्य' कहा है।

"**गाँवों से भरे** हुये जनपद किसी समय सुख–सम्पत्ति से लहलहाते थे। उनके आमोद–प्रमोद में नृत्य और गान को विशेष स्थान मिला था। समय–समय पर होने वाले पर्व और उत्सवों में स्त्री–पुरुष मंडल बाँध–बाँध कर नाचते थे। यह नृत्य, शरीर में भरे हुये सबल प्राण की स्वाभाविक चेष्टा थी। प्राचीन ग्रंथों में बहुत सी राग–रागनियों का और नाचों का वर्णन आया है। एक विशेष प्रकार का नृत्य हल्लीसक कहलाता था। इसमें घेरा बाँधकर नाचती हुई स्त्रियों के बीच में एक पुरुष उनके साथ ताल पर नाचता था। यह नाच ठेठ देहात के राग–रंग भरे जीवन का चित्र हमारे सामने खींच देता है। ग्वालियर राज्य की बाघ नामक गुफा में बहुत से भित्ति–चित्रों में हल्लीसक नाच का एक सुन्दर चित्र पाया गया है। इसमें सात स्त्रियों के मंडल में एक पृथ्वी–पुत्र जनपदीय नवयुवक नाचने में तल्लीन हो गया है। अहीर और ग्वाल स्त्रियों के समूह का जो रास नामक नृत्य था, दूसरे नृत्यों की अपेक्षा उसका हमारे साहित्य में अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णन हुआ है। किन्तु यह नृत्य भी अब जीवन का सत्य नहीं रहा। हमें सब ओर से काठ मार गया और हमारे नृत्य-गीत भी हमें छोड़कर चले गये।"

अजंता और बाघ के भित्ति-चित्रों की परम्परा ही सितन्नवासल में भी बढ़ती दिखाई देती है। इस कला-मंडप का मूल नाम सिद्धानांवास है जिसका अर्थ है सिद्धों का आवास। इस गुहा मन्दिर में जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ व चन्द्रप्रभ आदि की पांच विशालकाय प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं। शिल्पियों ने इन्हें चट्टानों को काटकर ही बनाया है। इसकी दीवारों पर भी अजंता जैसे सुन्दर व सजीव चित्र आंके गये हैं। सितन्नवासल की गुफायें पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन के समय (६०० ई. से ६२५ ई. तक) में बनी हैं। महेन्द्रवर्मन कला के पारखी; मर्मज्ञ तो थे ही स्वयं भी उच्चकोटि के गायक, कवि और कलाकार थे। महाबलीपुरम् के कला-मन्दिरों का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। महाबलीपुरम् में उनकी दो रानियों के साथ एक प्रतिमा भी है। सितन्नवासल की चित्रशाला में भी उनका एक भित्ति-चित्र है, जिसे पहले श्री. एन. सी. मेहता ने शिव का समझा था। बाद में कला-समीक्षकों ने इसे राजा महेन्द्रवर्मन का ठहराया और सितन्नवासल के भित्ति-चित्रों को पल्लव-चित्रकला का नाम दिया। अजंता की भांति ही दीवाल को समतल और चिकना करके उस पर गेरू से चित्रों की रेखायें खींच दी गई हैं और फिर उनको काले, हरे, लाल, नीले व सफेद आदि रंगों या उनके मिश्रित रंगों से भर दिया गया है।

अजंता की भांति ही सितन्नवासल के कलाकारों का प्रिय विषय कमल रहा है। उसके विविध रूपों से दीवारें भरी हुई हैं। कमलों से पूरित सरोवरों व नाल-सहित कमल लिए गन्धर्वों की छटा देखते ही बनती है। एक सरोवर कमलों से भरा हुआ है। उसमें मछलियाँ घूम रही हैं। हंस तैर रहे हैं। भैंसें, बैल और हाथी उस सरोवर में आनन्द-मग्न होकर क्रीडायें कर रहे हैं। उस में तीन पुरुष भी दिखाई दे रहे हैं। ऐसी ही कला-कृतियों से सितन्नवासल की दीवारें भरी हैं। कुछ चित्र बहुत दिनों से उपेक्षित अवस्था में पडे रहने के कारण उखड़ भी गये हैं। सितन्नवासल के भीतर के खम्भों पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो नर्तकियाँ आँकी गई हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि मानो रम्भा और उर्वशी ही अलका नगरी से पृथ्वी पर उतर आई है। जैसे ही दर्शक गुफा में घुसने लगता है, उसकी दृष्टि उन नृत्य–रता अप्सराओं पर टिक जाती है और फिर मानो वहाँ से हटना ही नहीं चाहती। दाहिनी ओर के खम्भे की नर्तकी के रंग कुछ उखड़ने से लगे हैं। कलापूर्ण अलंकार, रत्नों का जटा–मुकुट, गले में मोतियों की मालायें जहाँ चित्रकारों की सुरुचि-सम्पन्नता की परिचायक है वहीं, नर्तकियों का अलौकिक सौन्दर्य और नृत्य की गति उनकी अनेक वर्षों की कला–साधना की। नटराज की भांति ही उनका एक हाथ गज–हस्त मुद्रा में दिखाई देता है। चित्र कला के रसज्ञ श्री नानालाल चमनलाल मेहता ने इन्हें देखकर, भाव-विभोर हो, लिखा है –

"It was left to the artists of Southern India to crystallize into immortel form, the rhythm of dance and the energy of dynemic movement, as seen respectively in the glorious figures of swaying **'Apsras,' "loaded with jewelled ornaments, broad-hipped,** narrow waisted, powerful and graceful as panthers."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नटराज

कवि की अन्तर्दृष्टि ने जो शिव और सुन्दर देखा, जिसके प्रशस्ति-स्वर उसकी वाणी में गूंजे, उसी जीवन-तत्व को शिल्पी की कल्पना ने आराधना के क्षणों में मूर्त-रूप दिया। जिस प्रकार काव्य के क्षेत्र में निर्गुण, निराकार ब्रह्म के अंश राम और कृष्ण के रूप में महाकाव्यों के नायक बने, उसी प्रकार शिव, विष्णु और बुद्ध भी कला की भाव-भूमि पर उतरे और उसे अपने अनिर्वचनीय सौन्दर्य से भर गए। प्राचीन भारत के शिल्पी और कवि दोनों की कृतियाँ, धर्म की मूल-भावना से अनुप्रेरित रहीं, सम्भवतः इसीलिए उनमें कभी-कभी इतना साहृश्य दिखाई देता है कि आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है। एलीफैन्टा के गुहा-मन्दिर में महायोगी शिव की ध्यानावस्थित मुद्रा को देखते ही ऐसा लगता है कि कालिदास के कुमार-संभव का यह शब्द-चित्र साकार हो उठा हो--

"उन्होंने वीरासन लगा लिया है। वे सीधे, अचल बैठे हैं। वे अपने दोनों कन्धे झुकाकर, अपनी गोद में, कमल के समान दोनों हथेनियों को ऊपर किये, बिना हिले-डुले बैठे हैं।

वे सांपों से जटा बांधे हुए हैं.... भौहें तानकर कुछ-कुछ प्रकाश देने वाली, निश्चल, उग्र तारों वाली और अपनी किरणें नीचे डालने वाली अपलक आँखों से, नाक के अगले भाग पर दृष्टि जमाये वे बैठे हैं।

वे शरीर के भीतर चलने वाले सब पवनों को रोक कर ऐसे बैठे हैं, मानों न बरसने वाला बादल हो। बिना लहरों का निश्चल सरोवर हो या पवन-रहित स्थल में खड़ी लौ वाला दीपक हो।"

इस महायोगी मुद्रा में शिव उस स्थिर केन्द्र की भांति हैं, जिसके चारों ओर ब्रह्मांड शक्तियाँ परमाणुओं की भांति घूमती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहाँ तक तो कवि और शिल्पी? भाव–गगन में साथ–साथ समान स्तर पर उड़ते हुए दिखाई देते हैं किन्तु फिर शिल्पी की कल्पना का विहंग कुछ ऊँचा चढ़ता है। वह सृष्टि का गति–क्रम, उसकी ताल–बद्धता का स्रोत शिव की आदि–शक्ति से प्रवाहित देखता है, –उस शक्ति से जो अखिल ब्रह्मांड की सृष्टि, पालन और संहार करती है, और फिर वह उसे साकार अभिव्यक्ति देता है, एक नवीनतम प्रतीक का सृजन करता है। यह नादंत नृत्य करती शिव की प्रतिमा है–नटराज; लोक–मानस का शतदल पद्म।

भगवान विष्णु के सहस्र नामों की भांति देवादिदेव शिव के भी अनेक रूप हैं। यह रूप भारत के गाँव–गाँव में प्रतिष्ठित दिखाई देते हैं। कहीं पद्मासन पर शोभित, उमा–महेश्वर रूप में उनके दर्शन होते हैं। उनके हाथों में स्फुटित पद्म और त्रिशूल रहता है। निकट ही शक्ति–स्वरूपा उमा रहती हैं। अनुग्रह मूर्तियों में शिव अपने आराधकों को अभय–दान देते हुए दिखाई देते हैं। दक्षिणा–मूर्तियों में वे ज्ञान, योग और संगीत के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। जिस शास्त्र के स्वामी के रूप में उनकी कल्पना की जाती है, उसका प्रतीक भी उनके साथ ही रहता है। वीणाधर दक्षिणा–मूर्ति में शिव संगीत के आचार्य हैं अतः वे वीणा लिए हैं। नादंत नृत्य में उनके हाथ में डमरू रहता है।

आनन्द–मूर्ति नटराज नाच रहे हैं। उनके एक हाथ में डमरू है, दूसरा अभय मुद्रा में ऊपर उठा है, तीसरे में अग्नि है और चौथा गज–हस्त मुद्रा में तनिक झुका सा, उनके चरण के नीचे पड़े अपस्मार पुरुष की ओर संकेत कर रहा है। नटराज को एक घेरा घेरे है, जिसमें अग्नि की ज्वालायें हैं।

डमरू सृजन का प्रतीक है। इसका नाद जब दिक्–दिगंत में ध्वनित हो उठता है, आनन्द को नाद मिलता है, तब सृष्टि होती है, इसी लिए इसे नादन्त कहते हैं। सृजन के इस मूल–तत्व के अतिरिक्त इसमें अन्य प्रतीकों का भी समन्वय हुआ है। अभय मुद्रा, जड़ और चेतन की रक्षा करती है। अग्नि संहार का चिन्ह है। ऊपर उठा हुआ चरण उनकी ओर इंगित है, जो संसार से ऊपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठ गए हैं। अपस्मार पुरुष, भौतिक वासना और अज्ञान का प्रतीक है। स्वर्गीय डॉ. आनन्द के. कुमारस्वामी इसे, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव व अनुग्रह का समन्वय, मानते थे।'

शिव पुराण के पृष्ठ पलटते–पलटते मुझे उनकी इस मान्यता का आधार भी विद्येश्वर संहिता के दशम् अध्याय में प्राप्त हो गया–"ब्रह्मा, विष्णु बोले 'हे प्रभो! हमको सर्गादिक पंचकृत्यों के लक्षण सुनाइये।' शिव जी बोले, 'हे अज–अच्युत ! मेरे कृत्य का ज्ञान होना बहुत ही कठिन है, परन्तु मैं तुम से अत्यंत ही प्रसन्न हूं, इसलिए वह छिपा हुआ रहस्य सुनाता हूं। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह, यह मेरे पांच जगत–कृत्य, नित्य–सिद्ध हैं। संसार की रचना करना सृष्टि, उसकी रक्षा करना स्थिति और उस जगत का मर्दन कर प्रलय करना संहार है, उसका उत्क्रम करना ही तिरोभाव है और संसारियों के मोक्ष देना अनुग्रह है। इनमें सृष्टि आदि चार कृत्य तो संसार के लिए हैं किन्तु पांचवां कृत्य मुक्ति तो केवल मुझ में स्थिर–भाव से भक्ति करने वाले भक्तों के लिए मुक्ति का हेतु है। मेरे कार्य पंच भूतों में दिखाई देते हैं, पृथ्वी में सृष्टि, जल में पालन, अग्नि में संहार, वायु में तिरोभाव और आकाश में अनुग्रह।..... पहले तपस्या के द्वारा मुझ को प्रसन्न कर के तुम दोनों ने मुझसे सृष्टि व स्थिति दो कृत्यों को अलग–अलग प्राप्त कर लिया पर शेष लेने के लिये कोई तैयार न हुआ।"

यह भी कहा गया है कि सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह के कार्य पृथक्–पृथक् रूप से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर ओर सदाशिव के हैं।

चोल–कालीन शिल्पियों ने जब इन दिव्य–तत्वों को नटराज की कास्य-प्रतिमा का रूप दिया तब मानो कला के मान–सरोवर में एक सहस्र–दल कमल और खिल गया।

भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में शिव को ही नृत्य का आराध्य-देव मान कर, उनका स्तवन किया है। यह जगत उनके अंग है; वेद, पुराण,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्मृति, महा भारत, उप पुराण आदि उनके बचन हैं; सूर्य, चन्द्र, व समस्त तारागण आदि उनके आभूषण हैं। हस्तक आदि शरीर–चेष्टायें, भाव आदि मन–चेष्टायें और ज्ञानेन्द्रियों की चेष्टायें उन्हीं की अनुकम्पा से प्रेरणा पाती हैं। भगवान शिव ने भरत मुनि पर अत्यंत प्रसन्न होकर उन्हें तांडव–नृत्य दिया। उन्होंने पार्वती को लास्य–नृत्य दिया। बाणासुर की पुत्री उषा ने पार्वती से इस लास्य–नृत्य को सीखा। उन्होंने वह द्वारिका में यादव–कुल की स्त्रियों को सिखाया और फिर समस्त नारियों को प्राप्त हुआ। भरत मुनि ने सामान्य नृत्य ब्रह्मा जी की तपस्या करके उनसे प्राप्त किया।

शरीर की विविध चेष्टाओं द्वारा मन के भावों का प्रकटीकरण ही नृत्य है। यह मस्तक, हाथ, वक्ष, पांसु, कटि और पग, मनुष्य के छः अंग हैं जिनके द्वारा वह अपने मनो–भाव नृत्य में व्यक्त करता है। दृष्टि, भृकुटि, पलक, नेत्र कपोल, नासिका, ललाट, अधर, चिबुक आदि उपांग कहे गये हैं। कलाकार की मन स्फटिक सा स्वच्छ हो ताकि समस्त भावनायें, उसकी इच्छानुसार मुख-मंडल पर खेल सकें। उसका कंठ मधुर हो। वह कभी किसी से कर्कश वचन न कहे। मनोभाव और स्थितियों के प्रकार अनगिन हैं पर फिर भी नृत्य के आचार्यों ने नृत्य के एक सौ आठ भेद किये हैं। शैवागमों में शिव के भी एक सौ आठ प्रकार के नृत्य बतलाये गये हैं। चिदम्बरम् के नटराज मंदिर में शिव की इन समस्त नृत्यों की प्रतिमायें हैं और साथ ही उनके नीचे नाट्य–शास्त्र में वर्णित, उनके लक्षण भी लिख दिये गये हैं।

प्राचीन भारतीय गुहा–मंदिरों में शिव की जो नृत्य–प्रतिमायें मिलती हैं, उनका अध्ययन भी इन लक्षणों के आधार पर ही किया जा सकता है और उसे नृत्य–विशेष का नाम दिया जा सकता है।

एलोरा की गुफाओं में कटि–सम और ललित नृत्य की मूर्तियाँ मिलती हैं। कटि–सम में दोनों चरण समान रूप से झुके; दोनों हाथ वक्ष व नाभि के के निकट रहते हैं। मुख दाहिनी ओर झुका रहता है। एलोरा की इस शिल्प

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिमा में उनके आठ भुजायें हैं। इनमें से एक में डमरू है। दूसरा नाभि के निकट है। तीसरा परिधान से ढंका हुआ, वक्ष के निकट है और चौथा कटि पर टिका हुआ है। एक हाथ ऊपर उठा है और शेष भग्न हैं।

शिव के मुख पर उल्लास और अधरों पर मुस्कान है। गले में रत्न-जड़ित हार झूल रहा है उनके निकट ही माता उमा स्कंद को गोद में लिये हुये खड़ी हैं। पार्षदों में से एक वंशी बजा रहा है और दूसरा मृदंग। दो स्त्रियाँ भी वाद्य लिये हैं। एलोरा की प्रतिमायें इतनी प्राण–मयी हैं कि दर्शक उन्हें ठगा सा देखता रह जाता है, साथ ही वे इतनी विशाल भी हैं कि मन पर अपनी भव्यता की गहरी छाप डालती हैं। स्मिथ आदि विदेशी इतिहासकारों ने एलोरा की प्रतिमाओं की आलोचना करते हुये उन्हें भयावह और कला की दृष्टि से हेय कहा है। स्मिथ साहब ने अपने 'कला के इतिहास' में संहार–मूर्ति शिव की प्रतिमाओं के कुछ चित्र भी अपने मत के प्रतिपादन के लिए दिये हैं। द्वेष आदि हीन भावनाओं से प्रेरित होकर उन्होंने ऐसी प्रतिमाओं की उपेक्षा की है, जिनमें जीवन के रस–निर्झर झर रहे हैं। मन में जहाँ क्रोध–स्फुलिंग रहते हैं, वहीं शांति का निर्झर भी रहता है। कलाकार दोनों को व्यक्त करता है। जिसे व्यक्त करता है, उसमें कला की पूर्णता लाने की चेष्टा करता है। शिव का एक रूप वह भी है, जब वे प्रचंड ताँडव करते हैं और वह भी, जब देवी उमा के आगे वे सांध्य–प्रदोष नृत्य करते है। जिसे देव–गण देखते हैं।

सांध्य प्रदोष में "तीनों लोकों की जननी उमा अपने स्वर्ण–जड़ित रत्न सिंहासन पर आसीन हैं। भगवान शूल पाणि, कैलाश के उंत्तुग शैल–शिखरों पर नृत्य कर रहे हैं। देवगण उन्हें घेरे हुए खडे हैं। सरस्वती वीणा वादन कर रही हैं। इन्द्र वंशी बजा रहे हैं। ब्रह्मा के हाथ में मंजीर है। लक्ष्मी एक गीत प्रारम्भ कर रही हैं। विष्णु मृदंग लिए खडे हैं। अर्ध–रात्रि का समय है। गन्धर्व, यक्ष सिद्ध, किन्नर, अमर व अप्सरायें उस दिव्य संगीत को सुन रहे हैं; अलौकिक नृत्य को देख रहे हैं।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे साथ ही तांडव भी करते हैं–

प्राचीन ग्रंथों में उनके आनन्द ताँडव, त्रिपुर–ताँडव, संहार तांडव आदि का वर्णन प्राप्त होता है। त्रिपुरासुर के वध के पश्चात् शिव ने आनन्द–मग्न हो कर जो नृत्य किया, वही त्रिपुर तांडव है।

संहार ताँडव विश्व–प्रलय का नृत्य है, जिसमें वे आत्म–विस्मृत होकर देवी के साथ या अकेले ही अत्यंत वेग पूर्ण–नृत्य करते हैं।

सती अपने पिता दक्ष प्रजापति के यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति दे चुकी हैं। संहार मूर्ति रुद्र का कोप, विश्व को भस्म कर देना चाहता है। भागवत-कार श्री व्यास को उनके संहार–नृत्य का स्मरण आ रहा है–

"प्रलय काल में अपने जटा जूटों को बिखेर कर तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अपनी भुजाओं को ध्वजा के समान फैलाकर वे तांडव–नृत्य करते हैं। उस समय उनके त्रिशूल के फलों से दिग्गज बिंध जाते हैं और मेघ–गर्जन के समान भयंकर अट्टहास से दिशाये विदीर्ण हो जाती हैं। तब उनका तेज इतना असह्य, उनका भृकुटि–विलास इतना भयानक हो उठता है कि तारा–गण अस्त–व्यस्त हो जाते हैं।"

एलोरा का एक अन्य नृत्य–दृश्य भी अत्यंत भाव–पूर्ण है। शिव, जिनके माथे पर जटा–मुकुट और गले व कटि में सर्पो के हार हैं, अत्यंत वेग से नाच रहे हैं। कमर से लिपटा हुआ सर्प अपना फन उठाये है। उनके आठ हाथ हैं जिनमें से अधिकाँश टूट गये हैं, जो शेष हैं, उनमें डमरू व परशु आदि हैं। एक ओर देवि उमा बालक स्कंद का हाथ पकडे हुये खड़ी हैं। एक ओर दो गण हैं। उनमें एक मृदंग बजा रहा है और दूसरा वंशी। एक कंकाल मूर्ति भी शिव के साथ नृत्य कर रही है। यह अत्यंत भयावह जान पड़ती है। कुछ दूर पर एक नारी-मूर्ति चौकी पर बैठी हुई यह दृश्य देख रही है। दीवार पर अन्य देव–गण अंकित हैं। उनमें गणेश भी दिखाई देते हैं। यह 'ललितम्' नृत्य कहा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिव के नृत्य की शिल्प–कृतियों की भारतीय कला में कमी नहीं, इनमें से कुछ तो इतनी सफल हैं कि देखते ही बनती हैं। नृत्य के वेग को निर्जीव पाषाण के माध्यम द्वारा भी इतनी कुशलता से दिखा देना, केवल उन साधक शिल्पियों के लिए ही सम्भव था। बादामी की गुफा की विशाल नृत्य–प्रतिमा में, देखने वाला अपने को खो देता है। सातवीं शताब्दी की यह मूर्ति आदमी के कद से भी अधिक ऊँची है। इसके अठारह भुजायें हैं। इनमें कुछ भी शस्त्रास्त्र हैं। देवता के विविध हाथ उसकी विभिन्न क्रियाओं के ही परिचायक हैं। शिव के मस्तक पर लम्बा, रत्न–जड़ित मुकुट है, उसके पीछे प्रभा–मंडल है। उनके कानों में कुंडल हैं। बाहों में कला–पूर्ण बन्द हैं। सभी हाथों में कंकण हैं। उनका एक हाथ जांघ पर रक्खा हुआ है। गले में लम्बा, झूलता हुआ हार है। उसमें भी रत्न जड़े हुये हैं। वे पद्मासन पर खड़े हैं। उनका एक चरण आसन पर टिका हुआ किन्तु तनिक तिरछा है और दूसरा उससे उठा, किन्तु तनिक स्पर्श करता। पीछे उनका नन्दी दिखाई दे रहा है। एक ओर गणेश खड़े हुये यह नृत्य देख रहे हैं। उनके निकट ही दो मृदंग रक्खे हुये हैं, जिन्हें एक पार्षद बजा रहा है। इसे चतुर नृत्य कहा गया है।

हैदराबाद की दक्षिण-पश्चिम सीमा पर 'करुषा' की गुफायें हैं। इनमें शिव की तान्डव नृत्य करती हुई, एक अतीव मनोरम प्रतिमा है। कुछ भक्त चरणों में पड़े उनकी आराधना कर रहे हैं।

'गंगावतरण' भी इन एक सौ आठ नृत्यों में से है। इसमें नर्तक भगवती गंगा को अपनी जटाओं में धारण करते हुये शिव का भाव प्रदर्शित करता है। वह अपना एक चरण बार-बार आगे बढ़ता है। मस्तक झुका हुआ सा रहता है।

शिव का नृत्य, कवियों और शिल्पियों का अत्यंत प्रिय विषय रहा है। पथ दो थे पर भक्ति की अनुभूति एक सी थी। अन्त:प्रेरणा के बिना ऐसी कृतियों का सृजन नहीं हो सकता। भारत के कलाकारों ने जो साधना की है और जिस धैर्य के साथ की है, वह अपने ढंग की अकेली ही है–

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काव्य में भी नृत्य करते हुये शिव के रूप उतरे हैं। नृत्य-मूर्ति शिव महाकवि विद्यापति के इष्ट-देवता थे। उन्होंने शिव का उग्र-नृत्य और गौरी की मनो-दशा बडे सुन्दर शब्दों में आंकी है-

आजु आथ एक वत्त माहि सुख लागत हे ।
तोहें सिव धरि नट वेष कि डमरु बजाएब हे ।।
भल न कहल गरुरा रउरा आजु सु नाचब हे ।
जे जे सोच मोहि होत कहा समुझाएब हे ।।
रउरा जगत के नाथ कवन सोच लागए हे ।
नाग ससरि भुमि खसत पुहुमि लोटायत हे ।।
गनपत पोसल मजूर सेहो धरि खायत हे ।
अमिय चूइ भुमि खसत बघम्बर जागत हे ।।
होत बघम्बर बाघ बसह धरि खायत हे ।
टूटि खसत रुदराछ मसान जगावत हे ।।
गौरी कंह दुख होत विद्यापति गावत हे ।

दक्षिणापत्य के अनेक मन्दिरों में सभा-गृह हैं, जिनमें नटराज की प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं किन्तु चिदम्बरम् का विशाल मंदिर 'नटराज' का ही है। उसके गोपुरम् में भी शिव के एक सौ आठ नृत्यों की विविध प्रतिमायें हैं, जिनके नीचे उनके लक्षण लिखे हुये हैं। वस्तुतः 'नटराज' की नांदत नृत्य करती मुद्रा नाट्य-शास्त्र में 'भुजंगत्रसित' नृत्य कही गई है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अचानक पाँव के नीचे सर्प आ जाने से, घबरा कर अपना पांव उठा लेता है, उसी प्रकार का भाव, नर्तक अपने इस नृत्य में दिखाता है। शिव के इस नादंत नृत्य के साथ एक कथा दक्षिण में बहु-प्रचलित है। यह 'कोयल-पुराणम्' में आई है।

तारागांव के निकट वन में कुछ ऋषि-गण निवास करते थे। एक बार शिव, विष्णु के साथ वहाँ गये। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर लिया। ऋषि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस भुवन–मोहन सौन्दर्य को देखकर ठग से रह गये। फिर उनके मन में विकार उत्पन्न हुआ। विकार के बाद ईर्ष्या का भी उदय हुआ। ऋषि–गण नारी-प्रलोभन के कारण आपस में लड़ने झगड़ने लगे किन्तु ज्यों ही उन्हें वस्तु–स्थिति का पता चला, वे शिव पर क्रुद्ध हो उठे। अपनी उग्र मंत्र–शक्ति से उन्होंने शिव को नष्ट कर देना चाहा। उन्होंने यज्ञ प्रज्वलित कर मंत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। तुरंत ही उनमें से एक सिंह निकला। वह बड़ी तेजी से भगवान पाशुपत पर झपटा। उन्होंने एक मीठी हंसी हंसकर सिंह को पकड़ लिया और अनामिका के नख से उसका वक्ष विदीर्ण कर डाला। फिर उन्होंने सिंह का चर्म रेशमी वस्त्र की भांति अपने गले में लपेट लिया। ऋषियों को अपनी मंत्र–शक्ति निष्फल जाते हुये देखकर बड़ी निराशा हुई किन्तु वे मंत्र पढ़–पढ़ कर यज्ञ में अपनी आहुतियां डालते ही चले गये। कुंड में से एक सर्प निकला। शिव ने उसे माला की भांति अपने गले में लपेट लिया। वे फिर नृत्य में लीन हो गये। अंत में उन्हीं यज्ञ–ज्वालाओं में से एक राक्षस निकला, जो बौने के आकार का था। वह भी भगवान शिव की ओर झपटा।

शिव ने इस बौने को अपने चरणों के नीचे डाल लिया और उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़ दी। इसके पश्चात् वे फिर नाचने लगे। इस अद्भुत नृत्य को देखने के लिये अनेक ऋषि और देवगण वहाँ एकत्रित हो गये और भगवान शिव का स्तवन करने लगे। वहीं आदि शेष भी थे। उन्होंने शिव से वर मांगा कि वे तिल्लई के स्वर्ण–जड़ित सभा–मंडप में इसी नादंत नृत्य की आवृत्ति फिर करने की अनुकम्पा करें ताकि सृष्टि के सब लोग इस दिव्य–नृत्य की झलक देख सकें। अवढर दानी शिव ने उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। चिदम्बरम् में शिव का यह नृत्य हुआ।

चिदम्बरम् दक्षिणपत्य का एक प्रधान धार्मिक केन्द्र रहा है। नटराज का यह सभा–गृह भी सातवीं शताब्दी से बहुत प्रसिद्ध रहा है। नटराज चोल वंश के इष्ट-देव थे अत: उस वंश के राजाओं ने चिदम्बरम् के नटराज के मंदिर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संभागृह में सोना मढ़वा दिया। पांड्य कुल के आराध्य देव भी नटराज ही थे। उन्होंने भी अपनी राजधानी मदुरा में नटराज के सभा–गृह को चांदी से मढ़वा दिया। यह दोनों दक्षिण में 'कनक सभा–गृह, और 'रजत सभा–गृह' के नाम से अत्यंत प्रसिद्ध रहे हैं।

दक्षिणापथ में सन् १९१० के लगभग तिरुवालन्गादु नामक स्थान में नटराज की एक अत्यंत भाव–मयी कांस्य प्रतिमा प्राप्त हुई। यही वे प्रसिद्ध 'नटराज' हैं, जिनका चित्र हमारी भारत–सरकार ने अपनी एक सांस्कृतिक टिकट पर दिया है। भारतीय कला के महान ज्योतिर्धर श्री आनन्द के. कुमार स्वामी ने 'सिद्धांत दीपिका' में इस प्रतिमा की प्रतीकात्मकता पर एक सुन्दर लेख लिखा। वह लेख अत्यंत लोकप्रिय हुआ। श्री गोपीनाथ राव ने अपने विशाल ग्रंथ 'एलीमेन्टस् ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी' में उसे उद्धृत किया और फिर यह लेख कुछ संशोधनों के बाद श्री कुमार स्वामी के निबन्ध–संग्रह 'डान्स ऑफ शिव' में इसी नाम से प्रकाशित हुआ।

जिन महान आत्माओं ने लुप्त–प्राय भारतीय कला का पुनरुद्धार किया, उसके सुप्त-प्राय यज्ञ–कुंड में समिधायें डालीं, उनमें आचार्य श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर और प्रिंसिपल श्री. ई. बी. हैवल के साथ कला–योगी आनन्द के. कुमार-स्वामी का नाम भी अमर रहेगा। ज्यों त्यों भारत जाग्रत होगा, इन महान आत्माओं का यश और भी फैलेगा। इनके जीवन का एक–एक क्षण इस प्राचीन देश की महान संस्कृति की खोज में ही बीता है। 'नटराज' की यह प्रतिमा मदरास के संग्रहालय में है। यह इतनी ओजवती है कि विश्व के शिल्पी इसे आश्चर्य–चकित हो देखते रह जाते हैं। भारत के सुपरिचित कला–विद् श्री. देवी प्रसाद राय चौधरी ने इसे देख कर कहा है–

'यदि हम देर तक इस प्रतिमा को देखते रहें तो हमारे मानस में क्रमशः उस राग का भी, जो शायद 'माल कोश' या 'हिण्डोल' है, उत्थान होने लगता है, जो नृत्य के साथ प्रतीत के प्रच्छन्न अवगुण्ठन के पीछे गाया गया होगा। नृत्य की थिरकन प्रायः आल्हाद पूर्ण आत्म–विस्मृति की सीमा तक पहुँच गई है। ....ऊँचे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठे हुये हाथ में डमरू समय का सूचक है, जैसे 'सम' आना ही चाहता हो। अन्ततः विद्युत्-पात होता है। नृत्य सहसा थम जाता है। मानसिक रूप-चित्र हट जाता है और यथार्थ पुनः सामने आ जाता है, किन्तु यह देख कर हम भौचक्के रह जाते हैं कि कांस्य प्रतिमा की तीव्र गति में कोई अन्तर नहीं आया है।"

शिव योगियों के उपास्य हैं इस लिए उनके एक हाथ में डमरू है। डमरू से नाद होता है और उस नाद से स्वर्ग, धरित्री और ब्रह्मांड की सृष्टि होती है। इसीलिए इस नृत्य को 'नादन्त' कहते हैं। नटराज के बायें हाथ में अग्निज्वाला है। अग्नि संहार का चिन्ह तो है ही, सृजन का प्रतीक भी है। अग्नि से सृष्टि अपना रूप-परिवर्तन करके नित्य-नवीन सौन्दर्य प्राप्त करती है। उसकी मलिनता भस्म हो जाती है और फिर वह कुन्दन-सी निखरने लगती है। यह अग्नि उन बन्धनों को भी जलाकर भस्म कर देती है जिनमें प्रत्येक मानव-आत्मा जकड़ी हुई है। इसीलिए आराधक चाहता है कि उसका आराध्य, भावा-तिरेक में नृत्य करता हुआ उसके हृदय में प्रवेश करे। उसकी प्रकाश-रश्मियाँ, युग-युग के अन्धकार को विदीर्ण कर, अन्तर के कोने-कोने को आलोकित कर दें। नटराज का तीसरा हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा है मानो सृष्टि के समस्त जड़ और चेतन को शान्ति, सुरक्षा और सन्तोष का मंगल वरदान दे रहा हो। चतुर्थ कर गज-हस्त मुद्रा में, नीचे झुका हुआ मुलायक की ओर संकेत कर रहा है। नृत्य गणपति, कृष्ण-कालिय-दमन और देवी चामुन्डा की प्राचीन मूर्तियों में भी यह मुद्रा प्राप्त होती है।

नटराज का एक चरण ऊपर उठा हुआ है। वह मुक्ति का प्रतीक है। वह उनकी ओर इंगित करता है जो सांसारिक मोह-माया से बहुत ऊपर उठ गये हैं। मुलायक-अपस्मार पुरुष, अज्ञान और भौतिक वासना का; तम का प्रतीक है। इसे अपने चरणों से दबाकर ही नटराज नृत्य करते हैं।

नटराज के मस्तक पर मुकुट शोभित है। नीचे घुंघराले केश, मुक्त हो, लहरा रहे हैं। उनके इस मुकुट में नवोदित चन्द्र, पत्ते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और भगवती गंगा की मुखाकृति है। एक ओर सर्प कुण्डली मारे बैठा है। वे दाहिने कान में पुरुष का और बायें में स्त्री का कुण्डल पहने हैं। भारतीय शिल्प में ऐसी प्रतिमाएँ भी प्राप्त होती हैं जिनमें शिव मूर्तिमान संकल्प से खडे हैं और भागीरथी की अजस्र धारा उनकी जटाओं में गिर रही है। चन्द्र, ज्योति-कलाओं का प्रतीक है। पत्ते और चन्द्र एलीफैन्टा की प्रसिद्ध त्रिमूर्ति व अन्य प्रतिमाओं में भी प्राप्त होते हैं। सर्प और कपाल, विनाश के प्रतीक हैं। वे शिव के अघोर रूप में तथा तांडव नृत्य करती हुई प्रतिमाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

कानों के कुण्डल शिव के अर्द्ध-नारीश्वर रूप की ओर संकेत करते हैं। एक ही मूर्ति के दो अर्ध-भाग होते हैं, जिनमें से एक शिव का और दूसरा पार्वती का रहता है। उनके अवयव, अलंकरण और केश भी तदनुरूप ही होते हैं। शिव के जटा-जूट मंडित मस्तक पर नवोदित चन्द्र, देवी उमा के केशों में मोतियों की मालाएँ व अर्ध-मुकुलित कमल-कलिका सुशोभित रहती है।

जब विश्व-नियंता के मन में सृजन की कामना जगी तब उन्होंने 'संकल्प-रूप' तप किया और फिर एक युगल की सृष्टि की। वह थे प्राण और रयि। प्राण, स्वयं जीवन-शक्ति है और रयि वह है जिससे स्थूल तत्वों का पोषण होता है। इन्हीं दोनों तत्वों के संयोग से संसार बना है। धनात्मक और ऋणात्मक दो तत्वों की भांति रयि और प्राण के संयोग से ही सृष्टि का समस्त कार्य पूर्ण होता है। इन्हीं को अग्नि तथा सोम व पुरुष और प्रकृति की भी संज्ञा उपनिषदकारों ने दी है।

भारतीय दर्शन का यह सूत्र, अतीत के किस युग में कला की भाव-भूमि पर उतरा? जीवन को पूर्णत्व प्रदान करने वाले, एक-दूसरे के पूरक, दो विधायक तत्वों का कब समन्वय हुआ? पुरुष और प्रकृति को मिलाकर भी, एक मध्यवर्तिनी रेखा द्वारा पृथक् कर अर्द्ध-नारीश्वर की प्रतिमा कब बनी? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। भारतीय शिल्प में सम्मिलित मूर्तियों की शैली का प्रारम्भ कब से हुआ, यह तो संशोधन का विषय है। तीसरी शताब्दी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नटराज्

ब्रुकलेन संग्रहालय, अमेरिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारम्भिक काल में ग्रीक–लेखक वरदासेनस ने पेशावर के निकट एक गुहा–मंदिर में अर्ध–नारीश्वर की प्रतिमा देखी थी सम्भवतः यह कुषान–सातवाहन युग के शिल्पियों की कल्पना है, जिसका रूप गुप्त–कला में खिल उठा। वरदासेनस ने जिस मूर्ति को देखा उसकी उन दिनों पूजा की जाती थी।

हरिहर मूर्ति में भी इसी शैली का विकास दिखाई देता है। इसमें दाहिना अर्ध–भाग सदाशिव का तथा वामार्ध विष्णु का रहता है।

कार्यं हरिहरस्यापि दक्षिणार्धं सदा शिवः।
वाममर्धं हृषीकेशश्श्वेत नीलाकृतिः क्रमात् ॥
वर त्रिशूलचक्राब्ज धारिणो वाहवः क्रमात्।
दक्षिणे वृषभः पार्श्वे वामभागे विहङ्गराट् ॥

(विष्णु धर्मोत्तरम्)

यह हर्यर्ध मूर्ति, अर्ध नारीश्वर के साथ ही बादामी व अन्य कला–मंडपों में भी प्राप्त होती है। पुराणकारों ने इसकी पार्श्व–भूमि में भी विविध कथाओं के शब्द–चित्र आंके हैं। वह चिंतन और तप प्रधान शैव मत तथा कर्म-शील व क्षात्रत्व के शौर्य से पूर्ण वैष्णव मत (जिसमें कालान्तर में भक्ति–भावना का प्राधान्य हो गया) के समन्वय का सुन्दर प्रतीक है।

अर्ध नारीश्वर की मूर्ति में दाहिनी आधा भाग शिव का और वामार्ध उमा का रहता है। प्राचीन संस्कृत–साहित्य में उनकी इस एक–रूपता का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। कवि–कुल–गुरु कालिदास ने रघुवंश के प्रारम्भ में ही लिखा है कि, "जिस प्रकार वाणी और अर्थ पृथक होते हुये भी वास्तव में एक हैं, उसी प्रकार पार्वती और परमेश्वर भी एक हैं।" महाकवि वाण भट्ट के पुत्र पुलिन भट्ट ने कादम्बरी के उत्तरार्ध में भगवान शिव के इसी रूप का स्तवन किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देहं द्वयार्धघटनारचितं शरीर
मेकं पयोरतुपलक्षितसन्धिभेदम् ।
वन्दे सुदुर्घटकथा परिशेषसिद्धयै
सृष्टेर्गुरु गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ ।।

गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि भला जगत–जननी सीता की किससे उपमा दी जाय ? सरस्वती मुखर हैं और उमा का शरीर आधा ही है– 'गिरा मुखर तन अरध भवानी ।'–यह अर्ध नारीश्वर रूप की ओर ही संकेत है । विद्यापति का स्वर भी अर्ध–नारीश्वर के स्तवन में मुखरित हो उठा है–

'जय जय शंकर जय त्रिपुरारि ।
जय अध पुरुष जयति अधनारि ।।
आध धवल तनु आधा गोरा ।
आध सहज कुच, आध कटोरा ।।
आध हड़माल आध गजमोती ।
आध चानन सोहै आध विभूती ।।
आध चेतन मति आधा भोरा ।
आध पटोर आध मुंज डोरा ।।
आध जोग आध भोग विलासा ।
आध पिधान आध नग वासा ।।
आध चान आध सिंदुर सोभा ।
आध विरूप आध जग लोभा ।।
भनें कवि रतन विधाता जाने ।
दुइ कए बांटल एक पराने ।।

अर्ध नारीश्वर में शिव का आधा मस्तक जटा–जूट मंडित रहता है, और उस पर नवोदित-चन्द्र सुशोभित रहता है । वे रौद्र दृष्टि से देखते हैं–उनके ललाट पर भी आधा त्रि–नेत्र रहते है । भस्मावृत शरीर पर वे नाग का यज्ञोपवीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारण किये रहते हैं। उनकी मेखला व कानों के कुन्डल भी सर्पों के ही रहते हैं। वे सिंह–चर्म लपेटे रहते हैं। उनके एक हाथ में त्रिशूल रहता है और दूसरा अपने उपासकों को अभय दान देता है। किसी मूर्ति में उनकी वरद हस्त–मुद्रा रहती है। अर्ध नारीश्वर की जिन प्रतिमाओं में शिव के चार भुजायें रहती हैं उनमें वे एक में नाग अथवा कपाल लिये रहते हैं। दूसरा हाथ नन्दी पर रहता है।

पार्वती के घुंघराले केशों में मोतियों की मालायें और अर्ध–स्फुटित कमल–कलिका शोभित रहती है। उनके माथे पर शिव के त्रिनेत्र से सटा हुआ तिलक रहता हैं। उनकी दृष्टि शीतल रहती है। मुख पर वात्सल्यमयी सौम्य भावनायें रहती हैं। उनके अंगों में रत्न–जड़ित आभूषण रहते हैं। मणियों की मेखला रहती है। उनका पीन पयोधर सुन्दर वस्त्राभरण से आवृत रहता है। उनके एक हाथ में नीलोत्पल रहता है और दूसरे में दर्पण। अर्द्ध नारीश्वर की प्रतिमा के इन लक्षणों का विस्तार पूर्वक वर्णन, शिल्परत्न, विष्णु धर्मोत्तरम्, उत्तर कामिकागम और सुप्रभेदागम आदि ग्रंथों में प्राप्त होता है।

पुराणों में एक मनोरंजक कथा आती है कि एक बार जब भगवान शूलपाणि, त्रिलोक–जननी उमा के साथ कैलाश में बैठे थे, तब समस्त ऋषिगण उनका स्तबन करने आये। उनमें भृंगी ऋषि भी थे। अन्य ऋषियों ने पार्वती–परमेश्वर की परिक्रमा की किन्तु भृंगी के आराध्य तो केवल शिव थे। उन्होंने, उन्हीं की परिक्रमा की। उमा ने इसे अपना तिरस्कार समझा। उन्होंने क्रोधित होकर शाप दिया कि तुम कंकाल–मात्र रह जाओ। वही हुआ, फिर भी भक्ति विभोर भृंगी शिव की आराधना करते रहे। भगवान के सामने एक समस्या उठ खड़ी हुई। एक ओर सहधर्मिणी और दूसरी ओर परम प्रिय भक्त–तब उन्होंने एक नवीन उपाय सोचा। उन्होंने उमा के शरीर को स्वयं में ही सम्मिलित कर लिया––

एलीफैन्टा, की दीवाल से सटी हुई विशाल प्रतिमा 'महेश्वर मूर्ति' (जिसका त्रिमूर्ति नाम प्रचलित है।) में शिव के तीन मुख हैं। इनमें एक मुख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसे 'वामदेव' कहते हैं, उमा का ही स्वरूप है। यह तत्पुरुष और अघोर मुखों से आकार में भी छोटा है और स्पष्ट रूप से नारी–आकृति प्रतीत होता है। यह शिव की वह शक्ति ही है, जो उनमें समाहित है। उमा के दिव्य–मुख पर घुंघराली अलकें और कानों में मकराकृति के कुंडल हैं। उनके मुकुट में मोती की लड़ियाँ झूलती हुई दिखाई दे रही हैं। बीच में कमल का खिला हुआ फूल शोभित है। उमा के हाथ में भी नाल सहित कमल है।

इस त्रिमूर्ति के निकट ही अर्ध–नारीश्वर की एक शिला–मूर्ति है, जिसमें पुरुष और नारी–अवयवों का अंतर स्पष्ट है। उनके वस्त्र, केश–कलाप और कुंडल भी उसी प्रकार के हैं। नारी–भाग की ओर दासियाँ खड़ी हुई चंवर डुला रही हैं। शिव के निकट उनका वाहन नन्दी बैठा है। मथुरा के शिल्प, महाबलीपुरम, व कुम्भकोनम आदि की प्रतिमायें भी अतीव सुन्दर हैं। वे सब एक ही प्रतीकात्मक भावना का प्रतिनिधित्व करती हैं किन्तु जन–पदीय संस्कृतियों की विशेषता के अनुरूप वेश–भूषा और अलंकरण उनके अपने ढंग के रहते हैं। भारतीय कला में जब मैं पुरुष के ओज और नारी की सहज सुकुमार भावना के इस समन्वित रूप, अर्ध–नारीश्वर को देखता हूँ तो मुझे जिब्रान के शब्द याद आ जाते हैं, 'पुरुष और नारी प्रासाद के दो खम्भों की भांति हैं, जिनका स्वतंत्र अस्तित्व है; फिर भी जो सम्मिलित रूप से जीवन को साधे हुये हैं'। जान पड़ता है भारतीय कलाकारों ने आज के चिंतक के इस विचार को शताब्दियों पूर्वही मूर्त–रूप दे दिया।

नटराज नृत्य के सम्राट हैं और नृत्य दक्षिणापत्य की अपनी विशेषता हैं। दक्षिणापथ के अनेक मंदिरों में शिव के इस रूप की प्रतिष्ठा की गई है। यह सच है कि धर्म से प्रेरित कला की मूल भावनायें, प्रत्येक भारतीय के हृदय में समान स्थान पाती हैं, फिर भी देवता के एक विशिष्ट रूप को ही विशिष्ट प्रान्त में अधिक प्रधानता दी जाती है। उत्तर–प्रदेश के शिवोपासकों के आराध्य, योगी शंकर हैं, जो हिमगिरि के उत्तुंग शृंग पर ध्यान लगाये बैठे हैं। दक्षिण में नटराज के स्वरूप की अधिक प्रतिष्ठा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण भारत के जिन शिल्पियों ने नटराज की कांस्य–प्रतिमाओं को गढ़ा, अमूर्त को मूर्त–रूप दिया, उन्हें 'स्थपति' कहते थे। यह विश्वकर्मा को अपनी वंश–परम्परा का आदि–पुरुष तथा सौन्दर्य, लय, भाव और कल्पना की प्रेरणादायक देव–शक्ति मानते थे। शिल्पी विष्णु धर्मोत्तरम्, वाराह–मिहिर की वृहत् संहिता, और शिल्प–रत्न आदि प्राचीन ग्रंथों के शास्त्रीय आधार पर इन प्रतिमाओं को गढ़ते थे। नटराज के मंदिर के निर्माण से लेकर मूर्ति की प्राण–प्रतिष्ठा तक समस्त कार्य वे ही करते। हृदय की भावना को उभारने की चेष्टा रहती। विविध भंगिमाओं व हाथ और उंगलियों की मुद्राओं द्वारा वह व्यक्त की जाती। शिल्पी जिस धैर्य और आत्म–संतोष के साथ काम करता, वही उसका समुचित पुरस्कार होता।

भारत में कला और कविता दोनों का मूल–स्रोत धर्म रहा है। शिल्पी जब कठोर पाषाण में आराध्य के दर्शन के लिए धार्मिक तल्लीनता की सीमा को स्पर्श करने लगता है तब वह ऐसी कृतियों का निर्माण करता है, जिन पर युग गर्व करता है, सांची के अर्ध–चित्र, एलोरा का प्राणवान शिल्प, अजंता, बाघ, और सितन्नवासल की चित्र–मालायें, त्रिमूर्ति, सारनाथ की बुद्ध–प्रतिमा, और सत्-चित्-आनन्द के प्रतीक नटराज।

दक्षिण में नटराज को 'सभापति' भी कहते हैं। तिल्लई; जहाँ शिव के नृत्य करने का उल्लेख कोयल पुराणम् में आता है, चिदम्बरम् ही है। किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार उत्तर देश से एक राजा दक्षिणापत्य के प्राचीन मन्दिरों की तीर्थ यात्रा करने आया। उसका नाम सिंह वर्मन था। उस समय यहाँ एक बहुत बड़ा, दूर–दूर तक फैला हुआ वन था। राजा ने अपने वस्त्र उतारे और स्नान करने के लिए बावड़ी में उतरा। जब वह नहा चुका तो देखा कि उसके शरीर के सब अंग सोने के हो गये हैं। वह आश्चर्य में डूब गया। उसने बन में खोजा तो निकट ही शिव का एक मंदिर दिखाई दिया, जिसमें नटराज नृत्य कर रहे थे। उसने इस मंदिर को सोने से मढ़वा दिया और अपना नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिरण्य वर्मन रक्खा। वर्मन पल्लव राजाओं के नाम के पीछे लगता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर पता लगता है कि चोल राजा परान्तक प्रथम (९०७ ई. से. ९५१ ई. तक,) ने जिनकी उपाधि वीर नारायण या वीर चोल थी, इस मन्दिर को सबसे पहले सुवर्ण-मंडित कराने का श्रेय लिया। उसके पश्चात् उसके वंशानुयायी चिदम्बरम् की शोभा में वृद्धि करते गये, पुण्य-लाभ लेते गये। इनमें राज राज प्रथम का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है। उन्होंने मन्दिर को भी बढ़ाया! नटराज की कांस्य प्रतिमाओं की परम्परा भी इन्ही चोल राजा, राज राज प्रथम के समय से प्रारम्भ होती है – यही विद्वानों का मत है। तेरहवीं शताब्दी में पल्लव राजा पेरुंजिग देव ने चिदम्बरम् के मन्दिर का पूर्व की ओर का गोपुरम बनवाया। इसमें अनेक प्रतिमायें हैं और शिव की नृत्य करती हुई वे एक सौ आठ मुद्रायें भी अंकित हैं, जिनका भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र में वर्णन किया है। यहां उन सब का सम्बन्ध नृत्य–मूर्ति शिव से जोड़ दिया गया हैं। सोलहवीं शताब्दी में, विजय नगर के राजा कृष्ण देव राय ने अपनी विजय–यात्रा के पश्चात् इस मंदिर का उत्तर की ओर की गोपुरम बनवाया।

चिदम्बरम् दक्षिण का एक प्राचीन धार्मिक स्थल है। कहते हैं कि पतंजलि ने अपना योग–शास्त्र यहीं समाप्त किया था। यहीं अनेक शैवागमों की रचना हुई। 'देवारम' के शैव स्त्रोतों में इसका ही नाम 'तिल्लई' प्राप्त होता है। कहते हैं कि पहले यहाँ ब्राह्मणों के तीन हज़ार परिवार निवास करते थे, जो चिदम्बरम् के नटराज शिव को अपना कुल देवता मानते थे।

जिस जगह नटराज की मदरास संग्रहालय वाली प्रसिद्ध कांस्य–मूर्ति प्राप्त हुई, वह तिरुवालन्गाडु नामक स्थल भी अत्यंत पवित्र माना जाता है। वहाँ के लोगों की यह मान्यता है कि शिव ने यहाँ काली के साथ ही अत्यंत उग्र नृत्य किया था। कथा इस प्रकार है –

एक बार शिव और काली में नृत्य के सम्बन्ध में वाद–विवाद छिड़ गया। काली कहती थीं कि, 'भले ही आप नृत्य के सम्राट हैं किन्तु मैं वे समस्त नृत्य कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकती हूं जो आप किया करते हैं।' शिव को यह स्वीकार न था। अंत में नृत्य प्रारम्भ हुआ। शिव ने अनेक नृत्य किये किन्तु काली ने उन्हें दुहरा दिया। तब शिव ने उनके अभिमान को नष्ट करने के लिये एक अत्यंत उग्र नृत्य किया। वे अपना एक चरण उठाकर मस्तक व मुकुट तक ले गये फिर भी एक चरण से, उसी वेग से नृत्य करते रहे।

शैवागमों में इसे ऊर्ध्व ताण्डव कहा गया है। इसमें शिव अपना चरण उष्णीष तक ले जाते हैं। आगमों में शिव के कई नृत्यों का उल्लेख मिलता है। नटराज के नादंत नृत्य को जिसकी हम चर्चा कर चुके हैं, आनन्द ताण्डव भी कहा गया है। इसमें उनके नीचे अपस्मार पुरुष रहता है। दूसरे नृत्य सांध्य तांडव में अपस्मार पुरुष नहीं रहता। उनके एक हाथ की विस्मय मुद्रा रहती है। उमा ताण्डव में पार्वती उनके साथ रहती हैं। इसमें उनके दो अन्य भुजायें भी रहती हैं। दाहिनी ओर की इस भुजा में त्रिशूल रहता है और बाईं ओर के हाथ में कपाल। बाईं ओर की शेष भुजाओं की मुद्रायें 'गजहस्त' और 'विस्मय' रहती हैं। दाहिना चरण अपस्मार पर स्थित रहता है और बायां उठा हुआ। गौरी-तांडव भी इसी प्रकार का नृत्य कहा गया है किन्तु इसमें उनके एक हाथ में सर्प रहता है। दाहिनी ओर उनका नन्दी खड़ा रहता है और बाईं ओर देवि उमा रहती हैं। कालिका तांडव में शिव के आठ भुजायें रहती हैं। दाहिनी भुजाओं में पाश, डमरू और त्रिशूल रहता है और बाईं ओर की भुजाओं में कपाल, अग्नि-ज्वाला और घंटिका। दाहिनी ओर की भुजा की मुद्रा 'विस्मय' और बाईं ओर की 'गज-हस्त' रहती है।

त्रिपुर तांडव वह नृत्य है, जो भगवान शिव ने त्रिपुरासुर का संहार कर, आनन्द-मग्न हो किया था। इसमें शिव के सोलह भुजायें रहती हैं, जिनमें अनेक शस्त्रास्त्र रहते हैं। इसमें गौरी उनके बाईं ओर और स्कंद दाहिनी ओर खड़े रहते हैं। शिल्प रत्न के अनुसार स्कंद अपनी माता का हाथ पकड़े उनके निकट ही खड़े दिखाये जाते हैं। उस समय गौरी के मुख पर भय, विस्मय और प्रेम की भावनायें रहती हैं। संहार तांडव में उनके त्रिनेत्र और अष्ट भुजायें रहती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिणापत्य में इनमें से कई नृत्यों की प्रतिमायें मिलती हैं।

तिरुप्पनन्डाल की एक पाषाण–प्रतिमा में ऊर्ध्व तांडव का दृश्य है। शिव, मुयालक पर चरण रक्खे हुये उग्र नृत्य कर रहे हैं। दूसरा चरण उष्णीष तक उठा हुआ है। दाहिने हाथों में से एक में डमरू है और दूसरा अभय मुद्रा में है। बायें हाथों में से एक में अग्नि की ज्वाला है और दूसरा सिर के ऊपर है। शिव के माथे पर लम्बा किरीट मुकुट है। कानों के कुंडलों में से एक गोल है, जो अर्ध–नारीश्वर रूप का प्रतीक है। उनके गले में मोतियों की मालायें हैं और रत्नों का जड़ाऊ हार। कमर में कटि–बंध है और वक्ष पर मोटा यज्ञोपवीत लहरा रहा है। नृत्य के वेग के कारण उनके पीछे के वस्त्र उड़ते दिखाई दे रहे हैं। नीचे, चरणों के निकट, काली दोनों हाथ जोड़े हुये उनका स्तवन कर रही हैं।

नल्लूर में शिव की कालिका तांडव की कांस्य–प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसमें मुयालक घुटनों के बल बैठा है और शिव उसके सिर पर अपना दाहिना चरण रख कर नाच रहे हैं। दूसरा चरण भी झुका हुआ दाहिने का स्पर्श कर रहा है। इसमें शिव को ज्वालामय प्रभामंडल तो घेरे है किन्तु नीचे की पाद पीठिका नहीं है। माथे पर लम्बा उष्णीष है। इतना वेगवान नृत्य नटराज की मद्रास संग्रहालय वाली कांस्य–प्रतिमा के अतिरिक्त कम ही देखने में आता है। इन दोनों नृत्यों, 'ऊर्ध्व–तांडव' और 'कालिका–तांडव' की प्रतिमाओं के चित्र श्री एच. कृष्ण शास्त्री ने अपने ग्रंथ 'साउथ इंडियन इमेजेज़ ऑफ गॉड एन्ड गोडेसेस' में प्रकाशित किये हैं।

तंजोर के एक प्राचीन लेख में नटराज की प्रतिमाओं के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त हुआ है। जिसके अनुसार, 'उनके चार भुजायें होनी चाहिए। शिल्पी को उनके केशों की नौ-नौ जटायें दोनों ओर लहराती हुई दिखानी चाहिए। देवी गंगा भट्टारकी की प्रतिमा उन जटाओं में ही बनानी चाहिये। उन लहराती हुई जटाओं में फूलों की सात मालायें उलझी हुई हों। स्थपित को उमा की प्रतिमा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नटराज

ब्रुकलेन संग्रहालय, अमेरिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी नटराज के साथ ही बनानी चाहिएं किन्तु वे एक पृथक् पद्मासन पर खड़ी हों।' दक्षिण में कोट्टप्पदि नामक स्थान में नटराज की कांस्य-प्रतिमा, जो भूमि में गढ़ी हुई थी, निकाली गई तब उसके साथ उमा की भी एक मूर्ति प्राप्त हुई। देवी एक पृथक् पद्मासन पर खड़ी हैं। उनका एक हाथ अभय मुद्रा में उठा है। त्रिभंगी भंगिमा है। नटराज की पांच जटायें लहराती हुई हैं, जिनमें बीच बीच में फूल हैं। ऊपर की चार जटायें जुड़ी हुई हैं। जटाओं में गंगा की आकृति भी है। अंशुभेदागम के अनुसार यह आकृति शिव की दाहिनी ओर की जटाओं में होनी चाहिए। उनके दोनों हाथ 'अंजलि' मुद्रा में रहना चाहिये। इस कांस्य प्रतिमा में उनकी यही मुद्रा है।

मद्रास संग्रहालय की नटराज प्रतिमा की काफ़ी चर्चा की जा चुकी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दक्षिणापत्य की कांस्य-मूर्तियों में यह सर्वश्रेष्ठ है। चोलकालीन स्थपतियों की कला इसमें अपने चरम बिन्दु तक पहुँच गई है। इतनी ओजस्वनी प्रतिमा, जिसके अंग-अंग से नृत्य का वेग प्रकट हो रहा हो, अबतक दूसरी नहीं मिली। न केवल भारत वरन् विश्व-भर के कला पारखी जब इसे देखते हैं तब ठगे से रह जाते हैं। काउन्ट हरमन केसर लिंग ने अपनी 'ट्रेवेल डायरी ऑफ ए फ़िलोसफर' में यह मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि ओलिम्पिस की सारी देव सेना की अपेक्षा नृत्य करते नटराज में अकेले ही दिव्यता का तत्व अधिक रूप में विद्यमान है–

"One single dancing Shiva embodies more of the essence of divinity than a whole army of Olympians."

यह दुर्भाग्य की बात है कि इतनी प्राणवान प्रतिमा, तब प्राप्त हुई जब उसके कई अंश टूट चुके थे। ज्योति-मंडल, लहराती हुई जटायें, उनमें गुंथे फूल, आकाश से उतरती गंगा और कमर से लिपटा, प्रभा-मंडल को स्पर्श करता, वस्त्र; उनकी अब केवल कल्पना ही की जा सकती है।

कोलम्बो (लंका) अमस्टरडम (हालैन्ड) बैंकॉक, मुसी गुइमेत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संग्रहालय, पेरिस (फ्रांस) व अमेरिका के कई संग्रहालयों, बोस्टन, ब्रुकलेन व साउथ कैन्सिंगटन और पेन्सिलवेनिया में नटराज की अनेक उत्कृष्ट प्रतिमायें हैं, जो एक ही प्रतीकात्मक भावना का प्रतिनिधित्व करती हैं। अपने देश में कलकत्ता, राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली, व भारत-कला-भवन काशी में नटराज की अत्यंत सफल प्रतिमायें हैं। दक्षिण भारत के मन्दिरों में भी बहुत सुन्दर कला-कृतियां हैं। उपासक मंन्दिरों में नटराज की प्रतिमायें चढ़ाया करते थे। उत्सव के समय उनकी शोभा-यात्रायें निकलती थीं। मूर्तियों का जुलूस निकाला जाता था। चिदम्बरम् में अब भी प्रति वर्ष नटराज का उत्सव मनाया जाता है।

नटराज की प्रतिमाओं का काल-निर्णय करना बहुत कठिन है। शिव की नृत्य मूर्तियां, बादामी, एलोरा, एहोले आदि में मिलती हैं किन्तु भुजंग त्रासित नृत्य की कांस्य-प्रतिमाओं की परम्परा राज राज प्रथम के समय से ही प्रारम्भ होती है। राय कृष्णदास जी ने शैली के अनुसार नटराज की प्रतिमाओं को दो भागों में बांटा है।

(१) चोल शैली-९ से १३ वी १४ वी शताब्दी तक

(२) विजय नगर शैली-१३ वी १४ वी शताब्दी से आधुनिक काल तक

"हमारी मूर्ति (भारत कला-भवन की श्री. श्री प्रकाश जी द्वारा भेंट की गई मूर्ति) विजय नगर शैली की है। चोल शैली वाली नटराज मूर्तियों में मुख्य अंतर ये होते हैं- लम्बोतरी देह, लम्बे हाथ पांव और लंबोतरा चेहरा, घोडे की नाल की शकल का ज्वाला-मंडल, उदर पर सकरे पनहे का दुपट्टा, जो बाईं ओर डेढ़ गांठ है, बंधा रहता है। उसके छोर नृत्य की गति में फहरते हैं। इन मूर्तियों में अलंकरण कम, दम ज्यादा रहता है। विजय नगर शैली में क्रमशः अलंकरण की अधिकता और प्रवेग की न्यूनता रहती है।"

नटराज की कांस्य प्रतिमाओं पर उनके बनने का समय अंकित नहीं है, इसलिये उनका काल-निर्णय होना अत्यंत कठिन है। फिर भी विद्वानों का यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मत है कि नटराज की इन मूर्तियों का प्रारम्भ नवीं शताब्दी से हुआ है। यद्यपि नृत्य–मूर्ति शिव की कल्पना उससे बहुत पहले की है। गुप्तकालीन कला में उनकी नृत्य करती हुई पाषाण–प्रतिमायें मिलती हैं और महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत में उनके इस स्वरूप का अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है।

अमरावती के शिल्प की, उस शिला–मूर्ति की चर्चा हम कर चुके हैं जिसमें नर्तक राज–सभा में नाच रहा है। नर्तक का बायाँ हाथ गजहस्त या दण्ड हस्त मुद्रा में लम्बा फैला हुआ है और दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। बायां चरण नृत्य की मुद्रा में उठा हुआ है। नटरज का दाहिना चरण अपस्मार पुरुष पर है जो बौनो के आकार का है। बौनों पर खड़ी हुई स्त्रियाँ मथुरा के वेदिकास्तम्भों पर दिखाई देती हैं।

नटराज की प्रतिमाओं पर ही क्या समस्त भारतीय शिल्प पर तंत्र का गहरा प्रभाव है। देव–प्रतिमाओं की अनेक भुजायें, तन्त्रशास्त्र की ही देन हैं। उन्हें देवगण की विविध क्रियाओं के प्रतीक रूप में आंका गया है। तन्त्र–तत्व में नटराज व उनकी प्रतीकात्मकता पर विशद रूप से चर्चा की गई है।

नटराज की इन प्रतिमाओं के पश्चात् दक्षिणापत्य में धातु–मूर्तिओं की बाढ़ सी आ गई। ब्रह्मा, गणेश, विष्णु आदि सब की कांस्य–प्रतिमायें बनने लगीं। उनमें उसी प्रकार का ज्वाला–मंडल भी रहता जैसा कि नटराज की प्रतिमा में हैं। वैसी ही पट्टी, उस अंडाकार प्रभा–मंडल के भीतरी ओर रहती और उस पर वैसी ही नक्काशी भी की जाती। वैसे ही फूल बनते और वैसी ही उसमें से निकलती हुई ज्वालायें बनाई जातीं। इनमें से अनेक प्रतिमायें पीतल की भी हैं। मद्रास संग्रहालय इन कृतियों से भरा है।

नटराज की प्रतिमाओं को यद्यपि कांस्य–मूर्ति कहा जाता है किन्तु यह कई धातुओं का मिश्रण करके बनाई जाती थीं। इनमें अधिक अंश ताम्बे का रहता था, साथ में पीतल तथा रांगा भी मिला दिया जाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि नटराज की पुरानी प्रतिमाओं में सोने और चांदी की भी मिलावट हुई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कांस्य–प्रतिमायें ठोस बनाई जाती थीं। पहले मोम की आकृति बनाकर उस पर से मिट्टी का सांचा तैयार कर लिया जाता था। उसके आधार पर प्रतिमा बनती थी। इस क्रिया के बारे में एक विदेशी विद्वान जुलियन गार्नर ने लिखा है–

The Bronze is cast solid, as it was forbidden that objects of cult worship should be cast otherwise. It was done by a 'lost wax' process which was known in India as early as the 2nd century A. D. according to written records and probably was practiced much earlier. A model of figure was made entirely in wax and this was covered with clay instead of covering a core with wax after the method known to Europe. The wax was then melted out and molten metal was poured into the mold so formed. When this was removed there was still an arduous undertaking, ahead of the artist who then began the painstaking, chiseling and chasing that added the fine detail of the head-dress, of the jewellery, and the incised pattern on the arch of flame.

आज चोल राजाओं का नाम केवल इतिहास के पृष्ठों में दिखाई देता है, उनकी जय–ध्वनियाँ काल के झंझावात में खो गई हैं किन्तु उस युग के शिल्पियों का स्वप्न आज भी मूर्त–रूप में विद्यमान है। नटराज की प्रतिमाओं में थोड़ी बहुत भिन्नता रहते हुये भी वे एक ही मूल–भावना और प्रतीकात्मकता का प्रतिनिधित्व करती हैं। मद्रास संग्रहालय की नटराज प्रतिमा को देखने से लगता है कि शिव बड़े वेग में उग्र नृत्य कर रहे हैं। उनके शरीर का त्रिभंग–मरोर इसे बड़ी सफलता से व्यक्त कर रहा है। अमेरीका के ब्रुकलेन संग्रहालय की प्रतिमा के मुख पर शांति और सौम्यता अधिक है, मानो वे नाचते–नाचते रुक गये हों और अपने भक्तों को अभय प्रदान कर रहे हों।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नृत्य प्रतिमायें

नृत्य, भक्ति के क्षणों में, स्वयं निर्झर सा फूट पड़ता है। दक्षिण भारत भक्ति की उद्गम भूमि है। कहते हैं कि भक्ति दक्षिण में उपजी और उसे रामानन्द जी ले आये। सम्भवत: इसीलिये वहाँ नृत्य-कला का इतना विकास हुआ, कथकली और भरत नाट्यम् जैसी शास्त्रीय नृत्य-शैलियाँ पनपीं। पुराणों में विष्णु के नृत्य का कहीं वर्णन नहीं किन्तु होयसल काल के शिल्पियों ने तिरुमकुडलु (मैसूर) के अगस्त्येश्वर मंदिर में उनकी भी एक अष्टभुजी नृत्य-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की है। उनका एक हाथ अभय-मुद्रा में उठा है। शेष में शंख, चक्र, गदा व पद्म आदि हैं। उनके दोनों ओर दो वादक ढोलक बजा रहे हैं।

पिता शिव ब्रह्मांड को गति प्रदान करने वाले महान नर्तक, माता उमा लास्य की प्रवर्तिका—फिर भला गणेश इस कला से अपरिचित कैसे रह जाते? प्रतिमा विधान में जहाँ उनके वक्र-तुन्ड, वीर विघ्नेश, हैरम्ब आदि स्वरूपों का वर्णन है, वहीं नृत्य गणपति का भी है। नृत्य गणपति के आठ भुजायें होती हैं। जिनमें से सात में पाश, अंकुश, मोदक, कुठार आदि रहते हैं और आठवां हाथ खाली रहता है।

हलेबिड़ (मैसूर) के होयलेश्वर मंदिर में नृत्य-गणपति की जो नयनाभिराम मूर्ति है, उसमें उनके हाथों में परशु, पाश, मोदक-पात्र, दन्त, सर्प और पद्म है शेष दो हाथों में से एक भी मुद्रा गजहस्त और दूसरे की 'विस्मय-हस्त' हैं उनके मस्तक पर मुकुट है और सिर पर अत्यंत कला-पूर्ण छत्र तना है। चरणों के निकट भक्त-गण उनकी उपासना कर रहे हैं। उसी मंदिर में नृत्य गणपति की एक अन्य प्रतिमा भी है, जिसमें उनके अलंकरण देखते ही बनते हैं। वे मोतियों का मुकुट धारण किए हैं। रत्न-हार भूमि को स्पर्श कर रहा है। उनके हाथों में कंकण हैं, भुजाओं में बन्द हैं और कटि में स्वर्ण मेखला है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनका यज्ञोपवीत सर्प का है। यह प्रतिमा विविध प्रकार के अलंकारों से शोभित है। पाषाण प्रतिमाओं में अलंकरण का बाहुल्य इस शैली की विशेषता है। तंजोर के वृहदीश्वर मंदिर में भी नृत्य गणपति की प्रतिमायें हैं। उनमें भी शिल्पी अपने अंकन में पूर्णतया सफल हुआ है।

नृत्य गणपति, शिल्पियों के एक प्रिय विषय बन गए थे और उत्तर-मध्य-कालीन शिल्प में विभिन्न शैलियों में उनकी प्रतिमायें बनने लगीं थीं।

यह सत्य है कि शिल्प–शास्त्र के निश्चित प्रतिमा लक्षणों ने उत्तर–मध्य–कालीन शिल्पी की स्वतंत्र कल्पना शक्ति को अपने बंधनों में जकड़ सा दिया पर उसकी मौलिकता की सुरभि ने उनमें वास किया ही–कला के यह पद्म जिस शिल्प शैली के सरोवर में खिले उसको उन्होंने अपने नये–नये रूपों से भर दिया। अनेक प्राचीन जन–पदीय संस्कृतियों, वहां के निवासियों की विभिन्न वेश–भूषाओं और अलंकरणों–उनकी समस्त जीवन–संस्कृति का परिचय हमें इन प्रतिमाओं से मिलता है।

कल्चुरी कला–कृतियों में नृत्य–गणेश की एक बहुत सुन्दर प्रतिमा भेड़ाघाट में है। मध्य–प्रदेश में अनेक कल्चुरी कला–कृतियाँ अब भी बिखरी पड़ीं है। इस शैली पर गुप्त–कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, यद्यपि भाव–व्यंजना की दृष्टि से वे उतनी सफल नहीं कही जा सकतीं। चौंसठ योगिनियों की प्रतिमाओं में से कुछ बहुत उत्कृष्ट हैं। यह प्रतिमा भेड़ाघाट के गौरी शंकर मंदिर में है। नृत्य–गणपति का दाहिना चरण कमल के विशाल–दल पर और बायां आगे बढ़ा हुआ है। वे अपने एक हाथ में सर्प लिए हैं। उनका यज्ञोपवीत भी सर्पों का ही है। उनके नीचे उनका वाहन मूषक है और दो ओर दोनों गण खड़े हैं। मूर्ति के सन्मुख एक पुरुष डमरू बजा रहा है और एक स्त्री झुक कर देव–प्रतिमा की अर्जना कर रही है। यह मूर्ति विख्यात इतिहासकार व कला–समीक्षक स्वर्गीय श्री राखालदास वंद्योपाध्याय को अत्यंत प्रिय थी। उन्होंने अपने ग्रंथ 'हैययाज़ ऑफ त्रिपुरी' में इसका जिक्र भी किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य–प्रदेश में ऐसी ही और भी अनेक अत्यंत सुन्दर और सफल कृतियां हैं जिन्हें कला–पारखियों ने भूरि–भूरि सराहा है। आज इस बात की आवश्यकता है कि इस कला–निधि का, विशेष अध्ययन करके, उसे जनता के सन्मुख लाया जाय। जब यह उपेक्षित शिल्प–श्री प्रकाश में आवेगी तब निश्चित ही रसज्ञों का मन अपने माधुर्य और लालित्य से मोह लेगी।

कलकत्ता संग्रहालय में नृत्य गणपति की अनेक भाव–मयी कृतियों उत्तर मध्य कालीन शिल्प की हैं। काशी के भारत कला–भवन की नृत्य–गणपति की प्रतिमा में वे तनिक तिरछे खड़े हैं। वे बड़े प्रसन्न जान पड़ते हैं।

भारतीय शिल्प में कृष्ण की नृत्य–मुद्रायें भी आंकी गई हैं। कृष्ण मूर्तिमान माधुर्य और लावण्य हैं। सुन्दर शरीर पर पीताम्बर, कंठ में वैजयंती माला, मुकुट में मयूर पुच्छ और अधरों पर मुरलिका,–सोलह कलाओं से पूर्ण लीला–पुरुषोत्तम की रास–लीला का यह रूप अनुपम है। "उनका वेणु–गीत सुनकर कृष्णसार मृग दौड़े चले आते हैं और निकट आकर, अपनी बड़ी–बड़ी आंखों से कमल–नयन का यह रूप देखने लगते हैं।" कृष्ण दिव्य–संगीत के सृष्टा तो हैं ही, विलक्षण नर्तक भी हैं–, वह नर्तक जो फुफकारते हुए महा विषधर सर्प के फनों पर नाचता है–

कृष्ण तो बचपन से ही नृत्य किया करते हैं– उनकी छटा अनिर्वचनीय है। सरस्वती के पुत्र सूर ने उस छबि को शब्दों में बांधा है। यशोदा दधि विलो रही हैं। कृष्ण प्रसन्न हो कर रई की गति पर नाच रहे हैं–

'त्यों-त्यों मोहन नाचै, ज्यों ज्यों रई घमरकौ होय री।
तैसिय किंकिनि धुनि पद नूपुर सहज मिले सुर दोय री॥

शिल्पियों ने बाल–कृष्ण के इस रूप को 'नवनीत–नृत्य मूर्ति' कहा है। इसमें उनके हाथ में माखन रहता है। एक चरण तनिक सा झुका पद्मासन पर टिका रहता है और दूसरा भूमि से तनिक उठा रहता है। इसकी अनेक कांस्य–मूर्तियां भी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नटराज के पश्चात् कांस्य–प्रतिमाओं की एक परंपरा सी प्रारम्भ हो गई, लगभग सभी देवताओं की कांस्य प्रतिमायें बनीं। उन सब में वह घेरा, प्रभा–मंडल, भी दिखाई देता है जो नटराज में है– कुछ में यह नहीं भी रहता।

महाभारत में कृष्ण को 'ललित कलाओं का प्रवर्तक कहा गया है। उनके कालिय नाग के फणों पर किए गए नृत्य को 'अद्‌भुत तांडव नृत्य' का नाम दिया गया है। शिल्प शास्त्रों के प्रतिमा–विधान में इसे 'कृष्ण कालिय दमन' कहते हैं। इसमें कृष्ण का दाहिना चरण कालिय के फनों पर रहता है, बायाँ नटराज की भांति ऊपर उठा रहता है। उनके एक हाथ में कालिय की पूंछ रहती है। निश्चित रूप से इस प्रतिमा पर नटराज का प्रभाव है। उनका एक हाथ भी नटराज की तरह अभय मुद्रा में उठा रहता है।

मद्रास संग्रहालय कांस्य–प्रतिमाओं का भंडार है। इसमें 'कृष्ण कालिय दमन' की प्रतिमा भी है। उनके सिर पर रत्न–ज़डित मुकुट है और कटि में मणि मेखला। भुजाओं में बाजूबंद हैं। मुख पर अपूर्व शांति है। दक्षिणापत्य की मध्य–कालीन कला की यह एक अत्यंत उत्कृष्ट व भाव–पूर्ण कृति है।

भारतीय शिल्प नृत्य प्रतिमाओं से भरा पड़ा है। हलेबिड़ ओर बैलूर के मंदिरों का शिल्प, मानो पाषाणों में लिखा काव्य है– सुकुमार, लावण्यमयी प्रतिमायें मानो उसका अलंकार हैं। चिन्न केशव के मंदिर में साहित्य और कला की अधिष्ठात्री सरस्वती नृत्यमग्ना हैं। लगता है कि शिल्पी की साधना ही मूर्तिमती हो उठी हो। मंदिर के स्तम्भों पर और भी अनेक अनिंद्य सौन्दर्य-शालिनी मदनिकायें हैं। इनमें से प्रत्येक का श्रृंगार, अंग–सौष्ठव व रूप अनूठा है। खजुराहो, भुवनेश्वर व उदयपुर (उड़ीसा) की नृत्य–प्रतिमाओं की छटायें देखते ही बनती है। शिल्प में नृत्य के जो रूप आंके गए हैं। वे चाहें देवताओं के हों या मानव के–लोक जीवन के साथ उनका अविछिन्न नाता है। कला के यह अंग थकी आतमा में नवोन्मेष भरते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय
A
विभाग
152
पुस्तक संख्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh